Barcode : 99999990253082
Title -
Author -
Language - sanskrit
Pages - 209
Publication Year - 1937
Barcode EAN.UCC-13



# अभिनवा पाठावलिः

## तृतीया

'मास्तर ऑफ आर्ट' इति, 'सेकडरी ट्रेनिंग कॉलेज डिप्लोमा' इति च
उपपदद्वयसमलङ्कृतेन मुम्बापुरस्थ-'सेकडरी-ट्रेनिंग-कॉलेजॉ"मिधे
राजकीयविद्यापीठे प्रधानसस्कृताध्यापकपदधारिणा
वोकीलकुलोत्पन्नेन पाण्डुरङ्गसूनुना विनायकशर्मणा
तथैव च
'बॅचेलर ऑफ आर्ट्स् ( ऑनर्स )' इति, 'बचेलर ऑफ टीचिंग' इति च
उपपदद्वयधारिणा सप्ततारनगरस्थ-प्रधानाङ्क-राजकीयपाठशालायां
नियुक्तेन सस्कृताध्यापकेन
रङ्डीकुलोत्पन्नेन रङ्गाचार्यसूनुना लक्ष्मीकान्तशर्मणा
विरचिता

मॅक्मिलन् ॲण्ड कंपनी, लिमिटेड
इति ग्रन्थप्रकाशनश्रेण्या प्रकाशिता

प्रकाशकैः सर्वेऽधिकाराः स्वायत्तीकृताः

१९३७

मूल्यं एकरूप्यकः

*First Published* 1931
*Reprinted* 1935
*Revised* 1937

Printed by M N Kulkarni, at the Karnatak Printing Press,
Chira Bazar, Bombay 2,
and Published by F E. Francis, Manager, Messrs Macmillan &
Co, Ltd., Fort, Bombay

# PREFACE

This is the third book of the "New Sanskrit Readers" Series, intended for use in standard VI in Secondary Schools It contains a variety of lessons taken from classical works in Sanskrit, modified a little here and there, and graded to suit the stage of instruction As usual, exercises have been given at the end of each lesson, which will show the teacher how new forms and words are to be introduced, how a critical study of the particular passage may be made, and how a certain portion of written work from the pupil must be insisted on At this stage there should be no necessity for spoon-feeding by the teacher Oral work may be reduced, and more translation may be given to explain the abstract ideas and difficult constructions so often to be met with in classical Sanskrit.

Translation should now be taught as an *art*, the aim being to lead the pupil to study carefully the structure of both languages Re-translation is a very useful device in this respect, it helps the pupil to compare his own rendering with the original and encourages him, in due course, to cultivate style.

With this reader the class should also try free composition, the subjects being limited to simple descriptive and narrative topics for which a classical vocabulary is available. The teacher may give guidance in the careful arrangement of material before making the pupil write a short paragraph on each important point The teacher must remember, in these exercises, that the aim is to improve style. The teacher may also encourage the pupil occasionally to imitate the classical style in poetry as well as in prose

As usual, the grammar lessons should be given inductively. The pupils must know a minimum of Sanskrit grammar by

heart, and be able to use various forms of nouns, verbs, adjectives and numerals without hesitation or doubt Grammar lessons should end always with their application to language, giving the pupil sufficient drill in the recognition and use of the different forms and idioms

Our sincere thanks are due to the authors of the various classical works from which the lessons have been taken and to Pandit Rangacharya Raddi and Mr B. M Khuperkar Shastri for having read the manuscript and made useful suggestions

Bombay,
28th July, 1930.

V. P Bokil,
L R Raddi

*New Edition*

We thank Mr. M K. Gokarnakar Shastri for having gone through the proofsheets of this edition

*Authors*

Bombay,
15th October, 1937.

# अनुक्रमणिका


| पाठः । | | पृष्ठम् । |
|---|---|---|
| १ | मुकुन्दवर्णनम् .. ... | १ |
| २ | बकचापलम् .. | ६ |
| ३ | आत्मवञ्चितस्य कच्छपस्य | ७ |
| ४ | शर्वर्युपाख्यानम् ... ... | ९ |
| ५ | टिट्टिभचातुर्यम् .. ... | १२ |
| ६ | सन्मित्रम् ... ... | १५ |
| ७ | हेमन्तवर्णनम् ... ... | १८ |
| ८ | विग्रहः .. ... | २१ |
| ९ | व्यसनविमोक्षः ... ... | २४ |
| १० | सदुपदेशः ... ... | २७ |
| ११ | स्वामिभक्तिः ... ... | ३० |
| १२ | वद्दनां स्वैराल्लप.... ... | ३५ |
| १३ | श्रावणवध. .... ... | ३८ |
| १४ | स्वभावो दुरतिक्रम· ... | ४२ |
| १५ | स्यमन्तकप्राप्ति. ... | ४६ |
| १६ | हिमालयवर्णनम् ... | ४९ |
| १७ | दधीचिकथा ... ... | ५२ |
| १८ | शकुन्तलायाः प्रस्थान-मङ्गलम् ... ... ... | ५७ |
| १९ | वङ्कुक्षेराश्रमवर्णनम् ... | ६० |
| २० | राजकुमार· कमलानन्दः ( प्रथमो भागः ) | ६२ |
| २१ | राजकुमारः कमलानन्दः ( द्वितीयो भागः ) | ६७ |

| पाठः । | | पृष्ठम् । |
|---|---|---|
| २२ | निदाघवर्णनम् .... ... | ७१ |
| २३ | उद्धरेदात्मनात्मानम् ... | ७३ |
| २४ | भरतस्य प्रतिमागृहप्रवेशः... | ७६ |
| २५ | दमयन्ती-विलापः ... | ८२ |
| २६ | उर्वशीकुमार. ... ... | ८५ |
| २७ | उत्तङ्ककृतकुण्डलयाचनम् ... | ९१ |
| २८ | चन्द्रोदयवर्णनम् ... ... | ९४ |
| २९ | भगवद्भक्त· ... ... | ९७ |
| ३० | शकुन्तलापुत्रः ... ... | ९९ |
| ३१ | यक्षमन्दिरम् ... ... | १०४ |
| ३२ | चारुदत्तकृतमार्यकस्य रक्षणम् ... ... ... | १०६ |
| ३३ | धर्मे सत्यस्य माहात्म्यम् | १११ |
| ३४ | वसन्तवर्णनम् ... .... | ११३ |
| ३५ | श्रीकृष्णदौत्यम् ... ... | ११५ |
| ३६ | भार्गवदाशरथ्योः सङ्ग्रामः | १२२ |
| ३७ | अनुशासनम् ... ... | १२५ |
| ३८ | उपदेशपञ्चकम् ... ... | १२७ |
| ३९ | पार्वतीविवाहसम्भार-वर्णनम् ... ... | १२८ |
| ४० | पार्वतीविवाहवर्णनम् ... | १३२ |
| | सङ्कीर्ण-पद्यानि . ... | १३७ |
| | टिप्पण्यः ... ... | १४९ |
| | व्याकरण-पाठाः ... ... | १८२ |

# प्रथमः पाठः ।

## मुकुन्दवर्णनम् ।



वन्दे मुकुन्दमरविन्ददलायताक्षं
कुन्देन्दुशङ्खदशनं शिशुगोपवेशम् ।
इन्द्रादिदेवगणवन्दितपादपीठं
वृन्दावनालयमहं वसुदेवसूनुम् ॥ १ ॥
जयतु जयतु देवो देवकीनन्दनोऽयं
जयतु जयतु कृष्णो वृष्णिवंशप्रदीपः ।
जयतु जयतु मेघश्यामल कोमलाङ्गो
जयतु जयतु पृथ्वीभारनाशो मुकुन्दः ॥ २ ॥
मुकुन्द मूर्ध्ना प्रणिपत्य याचे
भवन्तमेकान्तमियन्तमर्थम् ।
अविस्मृतिस्त्वच्चरणारविन्दे
भवे भवे मेऽस्तु भवत्प्रसादात् ॥ ३ ॥
श्रीमुकुन्दपदाम्भोजमधुनः परमाद्भुतम् ।
यत्पायिनो न मुह्यन्ति मुह्यन्ति यदपायिनः ॥ ४ ॥
दिवि वा भुवि वा ममास्तु वासो
नरके वा नरकान्तक प्रकामम् ।
अवधीरितशारदारविन्दौ
चरणौ ते मरणेऽपि चिन्तयामि ॥ ५ ॥



सरसिजनयने सशङ्खचक्रे
मुरभिदि मा विरमेह चित्त रन्तुम् ।
सुखकरमपरं न जातु जाने
हरिचरणस्मरणामृतेन तुल्यम् ॥ ६ ॥
मा मैर्मन्द मनो विचिन्त्य बहुधा यामीश्चिरं यातनाः
नामी नः प्रभवन्ति पापरिपवः स्वामी ननु श्रीधरः ।
आलस्य व्यपनीय भक्तिसुलभं ध्यायस्व नारायणं
लोकस्य व्यसनापनोदनकरो दासस्य किं न क्षम' ॥ ७ ॥
भवजलधिमगाध दुस्तरं निस्तरेय
कथमहमिति चेतो मा स्म गाः कातरत्वम् ।
सरसिजदृशि देवे तावकी भक्तिरेका
नरकभिदि निषण्णा तारयिष्यत्यवश्यम् ॥ ८ ॥
आनन्द गोविन्द मुकुन्द राम
नारायणानन्त निरामयेति ।
वक्तुं समर्थोऽपि न वक्ति कश्चिद्
अहो जनानां व्यसनानि मोक्षे ॥ ९ ॥
क्षीरसागरतरङ्गशीकरा—
सारतारकितचारुमूर्तये ।
भोगिभोगशयनीयशायिने
माधवाय मधुविद्विषे नमः ॥ १० ॥

[ मुकुन्दमालायाम् ]

---

**प्रश्नाः**—कस्मिन् वंशे श्रीकृष्णोऽवतीर्णः ? किं याचते भक्त श्रीकृष्णम् ? के नाम पापरिपव ? किमवश्य तारयिष्यति नरान् ?

**परीक्षणम्**—को भाव समुत्पद्यते युष्माक मनसि काव्यस्यास्य पठनेन। के श्लोका युष्मभ्यमधिकतर रोचन्ते। कस्मात् कारणात्। प्रथमे श्लोके को वर्णो बहुश प्रयुक्तो वर्तते। कश्च तस्य परिणाम। द्वितीये श्लोके तृतीयपङ्क्तौ को विशेषो दृश्यते। तथैव तृतीये श्लोके चतुर्थपङ्क्त्याम्। षष्ठे श्लोके केनोपमित हरिचरणस्मरणम। दशमे श्लोके 'तारकिन'—पदस्य रहस्य प्रदर्श्यताम्।

**समासाः**—वृष्णिवंशप्रदीपः। अवधीरितशारदारविन्दौ। सरसिजनयने। मुरभिदि। भोगिभोगशयनीयशायिने। (एतेषा विग्रहान् कृत्वा नामानि कथयत।)

**काव्यवृत्तम्**—

१ वसन्ततिलका—(उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ ग।)

| त | भ | ज | ज | ग ग |
|---|---|---|---|---|
| वन्दे मु | कुन्दम | रविन्द | दलाय | ताक्षम |

२. मालिनी—(ननमयययुतेय मालिनी भोगिलोकैः।)

| न | न | म | य | य | |
|---|---|---|---|---|---|
| जयतु | जयतु | देवो दे | वकीन | न्दनोऽय | म् |

३ उपेन्द्रवज्रा—(उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ।)

| ज | त | ज | ग ग |
|---|---|---|---|
| मुकुन्द | मूर्ना प्र | णिपत्य | याचे। |

४. अनुष्टुभ्—लक्षणादिक चतुर्थे पाठे द्रष्टव्यम्।

५ मालभारिणी—(विषमे ससजा गुरू समे चेत्सभरा येन तु मालभारिणीयम्।)

| म | स | ज | ग ग |
|---|---|---|---|
| दिवि वा | भुवि वा | ममास्तु | वासो |
| म | भ | र | य |
| नरके | वा नर | कान्तक | प्रकामम्। |

६. पुष्पिताग्रा—( अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि तु नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा । )

| | | | |
|---|---|---|---|
| न | न | र | य |
| सरसि | जनय | ने सश | ह्रचक्रे |
| न | ज | ज | र | ग |
| मुरभि | दि मा वि | रमेह | चित्त र | न्तुम् । |

७ शार्दूलविक्रीडितम्—( सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगा शार्दूल-विक्रीडितम् । )

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| म | स | ज | स | त | त | ग |
| मा भैर्म | न्द मनो | विचिन्त्य | वहुधा | यामीश्वि | रं यात | ना· |

८ मालिनी—( लक्षण द्वितीयश्लोके कथितम् । )

९ इन्द्रवज्रा—( स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ ग । )

| | | | |
|---|---|---|---|
| त | त | ज | ग ग |
| आनन्द | गोविन्द | मुकुन्द | राम |

( यद्यपि अस्या पङ्क्तौ अन्त्याक्षर ह्रस्व तथापि वृत्तस्य कृते तद् दीर्घमिति ज्ञेयम् । )

१०. रथोद्धता—( रान्नराविह रथोद्धता लगौ । )

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| र | न | र | ल | ग |
| क्षीरसा | गरत | रङ्गशी | क | रा |

# द्वितीयः पाठः ।

## वकचापलम् ।

अस्ति भागीरथीतीरे श्वेताङ्गो नाम वकः । स कदाचिन्मानस-निवासिना हसाना गुणान् रसिकैरुपवर्ण्यमानानाकर्ण्य सञ्जातेर्ष्यश्चिन्तया-मास । अहो, को हि नामास्मदपेक्षया हसेषु विशेषो येन मन्दा अमी तानेव प्रशसन्ति । यथा वयमेव तेऽपि श्वेतकायास्तोयाधारसञ्चारिणश्च । भवतु, अतःपरं हसेनैव मया भवितव्यमिति । एवं विचिन्त्य सोऽय मूढधीः प्रफुल्लकह्लारभासुरेषु सरस्सु विहर्तुमारेभे । हिमाशुखण्डधवलानि च मृणालान्यास्वादयन् राजहसतामेवात्मनः प्रकाशयामास । अत्यजच्च वकजात्युचित मत्स्यव्यापादनम् ।

अथ कदाचित्स्नानार्थमुपस्थितेन केनापि मुग्धमतिना दारकेण कौतु-काद्गृहीतोऽयमानीतश्चात्मनः सदनम् । गृहवर्तिनो वृद्धास्तु तमवलोक्य भ्रान्तोऽसि वत्स, येन त्वयाऽय धूर्तशिरोमणिर्वको हस इति मत्वा गृहीत इत्यब्रुवन् । श्वेताङ्गस्तु तदाकर्ण्य रोषमिवाभिनयन् प्राह । धिङ् मूढानपरीक्ष्य-वादिनो ये हसकुलल्क्ष्यजन्मानमपि मां वक इति प्रजल्पन्तीति । तदाकर्ण्य कोऽपि चतुरमतिः सविनयमब्रवीत् । युज्यते महाभाग, कुतोऽन्यथा तवैतच्छुक्लत्वम् ? भवतु । अपनीयता कोप. । आस्वाद्यता चैतत्क्षीरमिति । अभिधाय चैवं सलिलमिश्रमस्मै पय उपजहार । सोऽपि मन्दात्मा नि.शेषमप्येतत्प्राशितवान् । तदवलोक्य च तेनाभिहितः । धूर्त वकहतक,

न जातु कर्मसादृश्याज्जातिर्विपरिवर्तते ।
रथवाहनमात्रेण किमश्वायेत गर्दभः ॥ १ ॥

तद्गच्छ ज्ञातोऽसीति । सोऽपिं लज्जितो यथागत प्रतिजगाम । अत एवोच्यते प्रज्ञैः—

हसः शुक्लो वकः शुक्लः को भेदो वकहंसयोः ।
नीरक्षीरविभागे तु हंसो हसो वको वकः ॥ २ ॥ इति ।

[ सस्कृतचन्द्रिकायाम् ]

---

**प्रश्नाः**—कीदृग स्वभावो वकस्य हसस्य च ? हसस्य क· स्वभावविशेषः ? कुत्र निवसन्ति हसा ? कथ परीक्षितो वको वृद्धै· ? किं कर्तु वका अक्षमा हसा· समर्था वा ?

**शब्दाः**—' हंस ' वाचकान् सर्वान् शब्दान् कथयत ।

**स्पष्टीकरणम्**—गर्दभ अश्वायते—अश्व इव भवति करोति आचरति वा । वक हसायते—हंस इव आचरति ।

**समासाः**—सजातेर्ध्व. । मूढधी । प्रफुल्लकह्लारभासुरेषु । वकजात्युचितम् । हसकुललब्धजन्मानम । यथागतम् । ( एतेषा विग्रहान् कृत्वा नामानि कथयत । )

---

# तृतीयः पाठः ।

## आत्मवञ्चितस्य कच्छपस्य ।

कस्मिंश्चित् सरसि गूढग्रीवो नाम कच्छपो वसति स्म । तस्य द्वौ हसौ जीवितनिर्विशेषौ सुहृदावास्ताम् । तौ प्रत्यहं सरस्तीरमागत्य तेन सह पुण्याभिः कथाभिः सुखेन कालं नीत्वास्तमनकाले स्वनीडसंश्रय-

मकुलनाम् । गूढग्रीवोऽपि तेन सत्समागमेन शास्त्रनिपुणो बहुश्रुतश्च सञ्जातः । पर जातिस्वभावान्नित्यमधीरप्रकृतिरासीत् । अथ गच्छता कालेन कश्चन धीवरः सरस्तीरमागत्यावदत् । अहो महानेष जलाशयः । बहुभिर्जलचरैरत्र भाव्यम् । तदेन श्व आलोडयिष्यामीति । एतद्वचनमाकर्ण्य मृग चिन्ताकुल. सन् गूढग्रीवो वयस्यौ प्रत्यब्रवीत् । भोः प्रियसुहृदौ न मेऽधुनाशा जीवित प्रति । सर्वथा मन्दभाग्योऽह श्वो धीवरजाल्दे पतिष्यामि । तन्न भवद्भया मद्धेतोर्विषादः कार्य· । केवलं स्मर्तव्योऽह प्रियजनकथासु ।

तत्तस्य वच श्रुत्वा तयोरेकतरो हस· प्राह । सखे, न त्व धैर्य त्यक्तुमर्हसि । विचिन्त्यता कोऽपि रक्षणोपायो येनैतामपि महापद तरसि । कच्छप प्रत्याह । सत्यमुदित वयस्येन । परमस्मिन् सङ्कटे न मे बुद्धि. प्रभवति । किं करोमि ? सर्वथा विवशोऽस्मि सज्ञान । तद्यदि भवद्भया कश्चिदुपायो दृष्टो भवेत्तर्हि रक्ष्यन्तामेते ममाल्पभाग्यस्य प्राणाः ।

ततोऽन्यतरेण हसेनोक्तम् । अस्ति तावदेक उपायः । इतो नातिदूरे प्रभूतजल नीलोद नाम विजन सरो विद्यते । तत्र त्वा नयाव । इदमत्र लघुकाष्ठ वर्तते । एनत्त्व मध्यदेशे दन्तैः सुदृढमवलम्बस्व । आवा चैनत् कोटिभागयोर्गृहीत्वा त्वत्सहितमुड्डीय नभोमार्गेण तत्सरो नयाव. । परं त्वया मौनव्रतेन भाव्यम् । नो चेत् काष्ठात् पतित पञ्चत्व गमिष्यसि । गूढग्रीवोऽवदत् । एव करोमि । न पुनर्मार्गे किमपि वचनप्रयोजन भवेत् । अनुगृहीतोऽस्मि भवद्भयाम् ।

अथ ते तयोश्चैरम्बरमार्गेण गच्छन्त कस्यापि महापुरस्योपरि प्राप्ताः । तत्र त कूर्म हसाभ्या तथा नीयमानमवलोक्य पौराः सविस्मयमवदन् । अहो चक्राकार किमपि पक्षिभ्या नीयते । पश्यत

पश्यतेति । एवं तेषां मिथः संवदता महान् कोलाहलः समुत्पन्नः । त श्रुत्वोपजातकुतूहलोऽधीरप्रकृतिरसौ कूर्मो विस्मृतमित्रवचनः सहसैवोच्चैरवदत् । भोः किमेष कोलाहलः—इत्यर्धोक्ति काष्ठाद् भ्रष्टो गूढग्रीवो वेगेन भूमौ निपतितः क्षणाच्च पञ्चत्व गतः ।



---

**प्रश्नाः**—कीदृग स्वभावः कच्छपस्य ? किं व्यसनमापतित तस्य ? क उपायश्चिन्तितो हसाभ्या तस्य निराकरणे ? किमर्थं कोलाहल कृत पौरैः ? केन कारणेन काष्ठाद् भ्रष्टः स कूर्म ?

**विशदीकरणम्**:—( १ ) केवल स्मर्तव्योऽह प्रियजनकथासु । ( २ ) परत्वया मौनव्रतेन भाव्यम् । ( ३ ) हंसाभ्या तथा नीयमानं कूर्ममवलोक्य पौराः सविस्मयमवदन् ।

**समासाः**—अधीरप्रकृति । विस्मृतमित्रवचन । मन्दभाग्यः । जीवित-निर्विशेषौ । महापदम् । नीलोदम् । ( एतेषा विग्रहान् कृत्वा नामानि कथयत । )

**स्वभाववर्णनम्**—अधीरप्रकृतेः पुरुषस्य व्यसनशतानि कथमापतन्ति तद्विस्तरेण वर्णयत ।

---

# चतुर्थः पाठः ।

## शबर्युपाख्यानम् ।

कृतातिथ्य रघुश्रेष्ठमुपविष्ट सहानुजम् ।
शबरी भक्तिसम्पन्ना प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥
अत्राश्रमे रघुश्रेष्ठ गुरवो मे महर्षयः ।
स्थिताः शुश्रूषण तेषां कुर्वती समुपस्थिता ॥ २ ॥



वहुवर्षसहस्राणि गतास्ते ब्रह्मणः पदम् ।
गमिष्यन्तोऽब्रुवन् मां त्वं वसात्रैव समाहिता ॥ ३ ॥
रामो दाशरथिर्जातः परमात्मा सनातनः ।
राक्षसानां वधार्थाय ऋषीणा रक्षणाय च ॥ ४ ॥
आगमिष्यति चैकाग्रध्याननिष्ठा स्थिरा भव ।
इदानीं चित्रकूटाद्रावाश्रमे वसति प्रभुः ॥ ५ ॥
यावदागमन तस्य तावद्रक्ष कलेवरम् ।
दृष्ट्वैव राघव देहं दग्ध्वा यास्यसि तत्पदम् ॥ ६ ॥
तथैवाकरव राम त्वद्ध्यानैकपरायणा ।
प्रतीक्ष्यागमन तेऽद्य सफल गुरुभाषितम् ॥ ७ ॥
कथं रामाद्य मे दृष्टस्त्वं मनोवागगोचरः ।
स्तोतुं न जाने देवेश किं करोमि प्रसीद मे ॥ ८ ॥

श्रीराम उवाच—यज्ञदानतपोभिर्वा वेदाध्ययनकर्मभिः ।
नैव द्रष्टुमहं शक्यो मद्भक्तिविमुखैः कदा ॥ ९ ॥
तस्माद्वामिनि वक्ष्येऽहमिदानीं भक्तिसाधनम् ।
सता सङ्गतिरेवात्र साधन प्रथम स्मृतम् ॥ १० ॥
यस्मान्मद्भक्तियुक्ता त्व ततोऽह त्वामुपस्थितः ।
इतो मद्दर्शनान्मुक्तिस्तव नास्त्यत्र संशय· ॥ ११ ॥
श्रुत्वा सा रामवचनं प्रविवेश हुताशनम् ।
तत्क्षण तत्प्रसादाच्च प्राप मोक्षं सुदुर्लभम् ॥ १२ ॥

[ अध्यात्मरामायणे ]

**प्रश्नाः**—कस्यातिथ्य कृत शवर्या ? किमवदन् गुरुश्च शवरीम् ? ईश्वरप्राप्तेः किमनुत्तम साधनम ? केन गुणेन शवर्या रामदर्शन जातम् ?

**परीक्षणम्**—को रस· प्रधानोऽस्मिन् काव्ये । के श्लोका रम्यतमा । कस्मात्कारणात् । पष्टे दशमे च श्लोके किमक्षर वहुश प्रयुक्तमस्ति । किं वा तस्य कार्यम । प्रथमे सप्तमे च श्लोके कानि विशेषणपदानि प्रकृतार्थं पोषयन्ति । तेषा रहस्य विशदीकुरुत ।

**समासाः**—सहानुजम । त्वद्ध्यानैकपरायणा । मनोवागगोचर । हुताशनम् । सुदुर्लभम । ( एतेषा विग्रहान् कृत्वा नामानि कथयत । )

**काव्यवृत्तम्**—अनुष्टुभ् वृत्तम्—( श्लोके पष्ट गुरु ज्ञेय सर्वत्र लघु पञ्चमम् । द्विचतु पादयोर्ह्रस्व सप्तम दीर्घमन्ययो ॥ )

लगुगु लगुल
कृतातिथ्य रघुश्रेष्ठमुपविष्ट सहानुजम् ।
लगुगु लगुल
शवरी भक्तिसम्पन्ना प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥

---

# पञ्चमः पाठः ।

## टिट्टिभचातुर्यम् ।



अथैकस्मिन् समुद्रप्रदेशे टिट्टिभदम्पती वसतः स्म । तत्र पुलिन-भागे स्वकृतनीडे तयोरण्डानि स्थापितानि । तदा सागरवेलामागच्छन्तीं वीक्ष्य सा टिट्टिभी स्वनाथमुवाच । भो आर्यपुत्र, विषमोऽय पुलिन-प्रदेशः । तद्विचिन्त्यता किमपि निरुपद्रवं स्थलं यत्र सुखेन प्रियापत्यैः सह चिरं वसाव इति । तदाकर्ण्य स टिट्टिभ आह । भद्रे, रम्योऽयं

समुदप्रदेशः । न किमप्यत्र भीतिप्रदम् । आवयोरण्डान्यपहर्तुं सागरो न शक्ष्यति । का मात्रा नाम समुद्रस्य मम पुरतः । तद्विश्रब्धा भवेति । सा टिट्टिभी प्रत्युवाच । नैतद्वचन युक्त कान्त । क्व विशालः सागरः क्व च भवान् स्वल्पबलः खगः । वलीयसा न कदापि वैरमुचितमिति । टिट्टिभोऽब्रवीत् । कियत् पुनः सागरस्य वल तदेव परीक्षितुमिच्छामि । न किमप्यत्र भेतव्यम् । पश्य तावन्मे पराक्रममिति । तयोर्दम्पत्योरिदं वचः श्रुत्वा समुद्रश्चिन्तयामास । अहो मदान्वता पक्षिकीटकस्य । तन्मयास्य प्रमाण कुतूहलादपि द्रष्टव्यम् । किं ममैषोऽण्डापहारे करिष्यतीति ।

पूर्णिमायां महती समुद्रवेलावहत् । तया च टिट्टिभाण्डान्यपहृतानि । तदा विलपन्ती सा टिट्टिभी भर्तारं भृश निनिन्द । तदाकर्ण्य टिट्टिभोऽवदत् । भद्रे, किं मा मूर्ख सम्भावयसि । तत् पश्य मे बुद्धिप्रभाव यावदेन दुष्टसमुद्र शोषयामि । येषामुत्साहशक्तिर्विद्यते स्वल्पा अपि ते गुरून् विक्रमन्ते । तदनया लोहसन्निभया मे चञ्च्वा सकलमेतज्जल शोषयामि इति । तस्य वचन श्रुत्वा सा टिट्टिभी प्राह । भो. कान्त, कस्ते सागरेण सह विग्रहः । यत्र जाह्नवी नवनदीरातानि गृहीत्वा नित्यमेव प्रविशति स सिन्धुः कथ शोष्यते ? यदि त्वयावश्य वैरानुष्ठान कार्यं तर्हि स्वबन्धूनन्यानपि विहगानाहूय सुहृज्जनसहित एव समाचर । यतोऽसाराणामपि वहूनां समवायो दुर्जयो भवतीति । ततः स वक-सारसमयूरादीन् समाहूय प्रोवाच । भो वयस्याः, पराभूतोऽहं समुद्रेण । अपहृतानि तेन ममाण्डानि । तर्हि चिन्यतामस्य शोषणोपाय इति । ते खगाः सम्मन्त्र्य प्रोचुः । अशक्ता वयमस्मिन् कर्मणि । तदस्माकं स्वामी वैनतेयोऽस्ति । तत्सकाशं गत्वा निवेदयाम इद परिभवस्थानम् ।

तथा निश्चित्य ते सर्वे गरुडस्य सकाश गत्वा· तस्मै टिट्टिभवृत्तान्त कथयामासु· । त समाकर्ण्य गरुडः कोपाविष्ट. सन् समुद्रशोषणनिश्चयं चकार । भगवन्तं महाविष्णु प्रणम्य स उवाच । भगवन्, भवदाश्रयोन्मत्तेन सागरेण मम भृत्यस्याण्डान्यपहृतानि । तद्दृश्यतामस्माक खगकुलम् । तत समुद्रो भगवता निर्भर्त्स्यमिय च शर सन्धायाभिहित. । भो दुरात्मन्, दीयन्ता टिट्टिभाण्डानि । नो चेत् स्थलना त्वा नेष्यामीति । तनो भीतिग्रस्तेन समुद्रेण तानि टिट्टिभाण्डानि प्रदत्तानि ।

[ पञ्चतन्त्रे ]

---

**प्रश्ना·**—कुत्र निवसन्ति टिट्टिभा ? का तेषा तत्र भीति ? एकस्मिन् मासे समुद्रवेला कतिवारमावहति ? को निश्चयटिट्टिभस्य ? केषा साहाय्य तेन याचितम ? किमर्थ ते विहगा गरुड प्रति गता ? गरुडेन किं कृतम् ? किं तात्पर्यमस्या कथाया ?

**शब्दप्रयोगाः**—( १ ) क्व विशालः सागर क्व भवान् । ( द्वौ कौ महदन्तर सूचयत. । ) ( 'क्व, क्व' इत्यव्ययद्वयम अन्येषु वाक्येषु प्रयोजयत । ) ( २ ) भेतव्यम, द्रष्टव्यम, विक्रमन्ते, सम्मन्त्र्य ( वाक्येषु प्रयोजयत । ) ( ३ ) 'वैनतेय' इत्यर्थेऽन्यान् शब्दान् कथयत ।

**समासाः**—स्वकृतनीडे । निरपत्रपम । दम्पती । सुहृज्जनसहितः । ( एतेषा विग्रहान् कृत्वा नामानि कथयत । )

**सुभाषितानि :**—( १ ) बलीयसा न कदापि वैरमुचितम । ( २ ) येषा-मुत्साहशक्तिर्विद्यते स्वल्पा अपि ते गुरून् विक्रमन्ते । ( ३ ) असाराणामपि बहूना समवायो दुर्जयो भवति । ( एतादृशान्यन्यानि सुभाषितानि कथयत । )

---

# षष्ठः पाठः ।

## सन्मित्रम् ।



आसीद्गोदावरीतीरे विशालः शाल्मलीतरुः । तत्र नानादिग्देशादागत्य रात्रौ पक्षिणो निवसन्ति स्म । अथ कदाचिदत्रसन्नायां रात्र्यामस्ताचलचूडावलम्बिनि भगवति कुमुदिनीनायके चन्द्रमसि तत्रैव कश्चिद् व्याधस्तण्डुलान् विकीर्य जाल वितस्तार प्रच्छन्नो भूत्वा स्थितश्च । तस्मिन्नेव काले चित्रग्रीवनामा कपोतराजः सपरिवारो वियति विसर्पंस्तास्तण्डुलकणानवलोकयामास । ततः कपोतराजस्तण्डुलकणलुब्धान् कपोतान् प्रत्याह । कुतोऽत्र निर्जने वने तण्डुलकणानां सम्भवः । एतन्निरूप्यतां तावत् । भद्रमिदं न पश्यामि । सर्वथाविचारित कर्म न कर्तव्यम् । इत्येतद्वचन श्रुत्वा कश्चित् कपोतः सदर्पमाह । आः किमेवमुच्यते ।

वृद्धाना वचन ग्राह्यमापत्काले ह्युपस्थिते ।
सर्वत्रैव विचारेण भोजनेऽप्यप्रवर्तनम् ॥ १ ॥

एतदाकर्ण्य सर्वे कपोतास्तत्रोपविष्टाः । यतो बहुश्रुता अपि लोभमोहिताः क्लिश्यन्ते । उक्त हि—

असम्भवं हेममृगस्य जन्म तथापि रामो लुलुभे मृगाय ।
प्रायः समापन्नविपत्तिकाले धियोऽपि पुंसा मलिनीभवन्ति ॥ २ ॥

तत्र ते सर्वे जालेन बद्धा बभूवुः । ततो यस्य वचनात्तत्रावलम्बितास्त सर्वे तिरस्कुर्वन्ति स्म । तच्छ्रुत्वा चित्रग्रीव उवाच । नायमस्य

दोष । यत आपतन्तीनामापदा हितोऽपि हेतुनामायाति । विपत्काले विस्मय एव कापुरुषलक्षणम् । तदत्र धैर्यमवलम्ब्य प्रतीकारश्चिन्त्यताम् । यतः—

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः ।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसन श्रुतौ
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥ ३ ॥

अन्यच्च—

षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता ।
निद्रा तन्द्रा भय क्रोध आलस्य दीर्घसूत्रता ॥ ४ ॥



इदानीं क्रियतामेवम् । सर्वैरेकचित्तीभूय जालमादायोड्डीयताम् । इति निश्चित्य पक्षिणः सर्वे सहसैव जालमादायोत्पतिताः । अनन्तरं स व्याधः सुदूराज्जालापहारकास्तानवलोक्य पश्चाद्धावन्नचिन्तयत् ।

संहतास्तु हरन्तीमे जाल मम विहङ्गमाः ।
यदा तु निपतिष्यन्ति वशमेष्यन्ति मे तदा ॥ ५ ॥

किन्तु चक्षुर्विषयातिक्रान्तेषु कपोतेषु स व्याधः सखेदं निवृत्तः । अथ लुब्धक निवृत्तं दृष्ट्वा ते पक्षिण ऊचु. । किमिदानीं कर्तुमुचितम् ।

चित्रग्रीव उवाच । अस्माक मित्र हिरण्यको नाम मूषकराजो गण्डकीतीरे चित्रवने निवसति । सोऽस्माक पाशांश्छेत्स्यति । इत्यालोच्य सर्वे हिरण्यकविवरसमीप प्राप्ताः । ततो हिरण्यक. कपोतराजस्य वचन प्रत्यभिज्ञाय ससम्भ्रमं शतद्वारात् स्वविवराद् बहिर्निःसृत्या-ब्रवीत् । आः पुण्यवानस्मि । प्रियसुहृन्मे चित्रग्रीवः समायातः । तथा हि—

यस्य मित्रेण सम्भाषा यस्य मित्रेण संस्थितिः ।
यस्य मित्रेण सलापस्ततो नास्तीह पुण्यभाक् ॥ ६ ॥

पाशावद्धांश्चैतान् दृष्ट्वा सविस्मयः क्षणं तूष्णीं स्थित्वोवाच । सखे, किमेतत् । चित्रग्रीवोऽवदत् । वयस्य, अस्माक कर्मणः फलमेतत् । एतच्छ्रुत्वा हिरण्यकश्चित्रग्रीवस्य बन्धनं छेत्तुं सत्वरमुपासर्पत् । तदा चित्रग्रीव उवाच । मित्र, मा मैवम् । अस्मदाश्रितानामेषा तावत् पाशाञ्छिन्धि । मम पाशान् पश्चाच्छेत्स्यसि । इत्याकर्ण्य हिरण्यकः प्रहृष्टमनाः पुलकितः सन्नब्रवीत् । साधु, सखे साधु । अनेनाश्रित-वात्सल्येन त्रैलोक्यस्यापि प्रभुत्व त्वयि युज्यते । एवमुक्त्वा तेन सर्वेषां

बन्धनानि च्छिन्नानि । आतिथ्य च सम्पादितम् । ततश्चित्रग्रीव-स्तमामन्त्र्य सपरिवार इष्टदेशान् ययौ । हिरण्यकोऽपि स्वबिलं प्रविष्ट. ।

[ हितोपदेशे ]

---

**प्रश्नाः**—किमर्थं भूमिमवतीर्णा कपोता ? क उपायश्चिन्तितश्चित्रग्रीवेण जालादात्मानमनुचराश्च मोचयितुम ? जालमादाय कुत्रागच्छत्ते सर्वे कपोता ? कथ निकृन्तित हिरण्यकेन तज्जालम् ?

**वर्णनम्**—व्याधाना दिनक्रम विस्तरेण वर्णयत ।

**तात्पर्यम्**—कपोताना के गुणदोषा अत्र दृश्यन्ते । केन च सरक्षितास्तेषा प्राणा । 'सहति कार्यसाधिका' इति यस्या अभिप्रायो वर्तते तादृशीं कामन कथा रचयत ।

**शब्दप्रयोगाः**—( १ ) अन्या कथाया 'मतिगमम्या' उदाहरणानि प्रदर्शयत । ( २ ) 'मलिनीभवन्ति'—कीदृशोऽय शब्दप्रयोग । अन्यान्यप्ये-तादृशान्युदाहरणानि विचिनुत ।

---

# सप्तमः पाठः ।

## हेमन्तवर्णनम् ।



उटजे वसतस्तस्य राघवस्य महात्मन ।
गरद्व्यपाये हेमन्त ऋतुरिष्टः समागत' ॥ १ ॥
स कदाचित् प्रभाताया शर्वर्यां रघुनन्दनः ।
प्रययावभिषेकार्थं रम्या गोदावरीं नदीम् ॥ २ ॥
प्रह्वः कलशहस्तस्तु सीतया सह वीर्यवान् ।
पृष्ठतोऽनुव्रजन् भ्राता सौमित्रिरिदमब्रवीत् ॥ ३ ॥

अयं स कालः सम्प्राप्तः प्रियो यस्ते प्रियव्रद ।
अलङ्कृत इवाभाति येन संवत्सरः शुभः ॥ ४ ॥
नीहारपरुषो लोकः पृथिवी सस्यमालिनी ।
जलान्यनुपभोग्यानि सुभगो हव्यवाहन. ॥ ५ ॥
प्राज्यकामा जनपदाः सम्पन्नतरगोरसाः ।
विचरन्ति महीपाला यात्रार्थं विजिगीषवः ॥ ६ ॥
सेवमाने दिशं सूर्ये दृढमन्तकसेविताम् ।
विहीनतिलकेव स्त्री नोत्तरा दिक् प्रकाशते ॥ ७ ॥
प्रकृत्या हिमकोषाढ्यो दूरसूर्यश्च साम्प्रतम् ।
यथार्थनामा सुव्यक्त हिमवान् हिमवान् गिरिः ॥ ८ ॥
अत्यन्तसुखसञ्चारा मध्याह्ने स्पृशति सुखाः ।
दिवसाः सुभगादित्याश्छायासलिलदुर्भगाः ॥ ९ ॥
मृदुसूर्याः सुनीहाराः पटुशीताः समाहिता. ।
शून्यारण्या हिमध्वस्ता दिवसा भान्ति साम्प्रतम् ॥ १० ॥
निवृत्ताकाशशयनाः पुष्पनीता हिमारुणा ।
शीतवृद्धतरायामास्त्रियामा यान्ति साम्प्रतम् ॥ ११ ॥
रविसङ्क्रान्तसौभाग्यस्तुषारारुणमण्डलः ।
निश्वासान्ध इवादर्शश्चन्द्रमा न प्रकाशते ॥ १२ ॥
ज्योत्स्ना तुषारमलिना पौर्णिमास्यां न राजते ।
सीतेव चातपश्यामा लक्ष्यते न च शोभते ॥ १३ ॥
प्रकृत्या शीतलस्पर्शो हिमवृद्धश्च साम्प्रतम् ।
प्रवाति पश्चिमो वायुः काले द्विगुणशीतलः ॥ १४ ॥

वाष्पच्छन्नान्यरण्यानि यवगोधूमवन्ति च ।
शोभन्तेऽभ्युदिते सूर्ये नदद्भिः क्रौञ्चसारसैः ॥ १५ ॥
खर्जूरपुष्पाकृतिभिः शिरोभिः पूर्णतण्डुलैः ।
शोभन्ते किञ्चिदालम्बाः शाल्य कनकप्रभाः ॥ १६ ॥
अवश्यायनिपातेन किञ्चित् प्रक्लिन्नगाद्वला ।
वनाना शोभते भूमिर्निविष्टतरुणातपा ॥ १७ ॥
स्पृशन् सुविपुल शीतमुदक द्विरदः सुखम् ।
अत्यन्ततृपितो वन्यः प्रतिसंहरते करम् ॥ १८ ॥
एते हि समुपासीना विहगा जलचारिणः ।
न गाहन्ते जल स्वच्छमप्रगल्भा इवाहवम् ॥ १९ ॥
अवश्यायतमोनद्धा नीहारतमसावृता ।
प्रसुप्ता इव लक्ष्यन्ते विपुष्पा वनराजयः ॥ २० ॥
वाष्पसंच्छन्नसलिला लक्ष्यविज्ञेयसारसा ।
हिमार्द्रवालुकैस्तीरैः सरितो भान्ति साम्प्रतम् ॥ २१ ॥
तुषारपतनाच्चैव मृदुत्वाद् भास्करस्य च ।
शैत्याद्वगाग्रस्थमपि प्रायेण रसवज्जलम् ॥ २२ ॥
जराजर्जरितैः पत्रैः शीर्णकेसरकर्णिकैः ।
नालशेषा हिमध्वस्ता न भान्ति कमलाकराः ॥ २३ ॥

[ वाल्मीकिरामायणे ]

---

प्रश्न—कति ऋतव संवत्सरस्य ? कस्य ऋतो. पश्चाद् हेमन्त आगच्छति ? कुत्र वर्तते सूर्यस्तदा ? कीदृशो वायुरस्मिन् ऋतौ ? कीदृशी पृथिवी च दृश्यते ?

जनपदाश्च किं लभन्ते ? किं कुर्वन्ति नृपास्तदा ? कथ शोभते चन्द्रो हेमन्ते ? किं दृश्यते नद्यां वने च ? कथं व्यवहरन्ति पशवो विहगाश्च तदा ?

**परीक्षणम्**—किमन्तर काव्यस्यैतस्य 'वर्षावर्णनस्य' च। को रसो मनसि प्रादुर्भवति काव्यस्यास्य पठनेन । अपि सदृशोऽय रसो हेमन्तजस्य मनुजभावस्य । सप्तमे श्लोके कयोपमितोत्तरा दिक् । विशेषणपदानां क्रियाविशेषणस्य चौचित्यं विशदीकुरुत । द्वादशे श्लोके 'निश्वासान्ध.' इति पदस्यौचित्य दर्शयत । किमक्षर बहुधा विद्यते द्वितीयाया पक्तौ । कस्तस्य पठनस्य परिणाम । एकोनविंशतितमे श्लोके केनोपमिता. खगा. । किं कारणं तादृशस्य व्यवहारस्य । स्वभावोक्तिरन्यान्युदाहरणानि प्रदर्शयत ।

**काव्यवृत्तम्**—अस्य काव्यस्य वृत्तं अनुष्टुभ् । ( लक्षणादिक चतुर्थे पाठे द्रष्टव्यम् । )

---

# अष्टमः पाठः ।

## विग्रहः ।



अस्ति कर्पूरद्वीपे पद्मकेलिनामधेय सर· । तत्र हिरण्यगर्भो नाम राजहसः प्रतिवसति । स च सर्वैर्जलचरपक्षिभिर्मिलित्वा पक्षिराज्येऽभिषिक्त· । एकदासौ राजहसः सुविस्तीर्णकमलपर्यङ्के सुखासीनः परिवारपरिवृतस्तिष्ठति । तत· कुतश्चिद्देशादागत्य दीर्घमुखो नाम वकः प्रणम्योपविष्टः । राजोवाच । दीर्घमुख, देशान्तरादागतोऽसि । वार्ता कथय । स ब्रूते । देव, अस्ति महती वार्ता । तामाख्यातुकाम एव सत्वरमागतोऽहम् । श्रूयताम् ।

अस्ति जम्बुद्वीपे विन्ध्यो नाम गिरिः । तत्र चित्रवर्णो नाम मयूरः पक्षिराजो निवसति । तस्यानुचरैश्चरद्भिः पक्षिभिरहं दग्धारण्यमध्ये

चरन्नवलोकितः पृष्टश्च । कस्त्व कुतः समायातोऽसि । तदा. मयोक्तम् । कर्पूरद्वीपस्य राजचक्रवर्तिनो हिरण्यगर्भस्य राजहसस्यानुचरोऽहम् । कौतुकादेशान्तरं द्रष्टुमागतोऽस्मि । एतच्छ्रुत्वा पक्षिभिरुक्तम् । अनयो-र्देशयो को देशो भद्रतरो राजा च । मयोक्तम् । आ· किमेवमुच्यते । महदन्तरम् । यत कर्पूरद्वीप· स्वर्ग एव राजहसश्च द्वितीय. स्वर्गपति । अत्र मरुस्थले पतिता यूय किं कुरुथ ? आगच्छतास्मद्देशम् । ततोऽस्मद्वचनमाकर्ण्य सर्वे सकोपा बभूवु । ततस्तैः पक्षिभि कोपादुक्तम् । केनासौ राजहंस कृतो राजा ? ततो मयोपजातकोपेनो-क्तम् । युष्मदीयमयूर केन राजा कृत ? तत एतच्छ्रुत्वा ते सर्वे मा हन्तुमुद्यता· । ततो मयापि स्वविक्रमो दर्शितः । ततस्तै· पक्षिभिरुक्तम् । अरे पाप वक, अस्माक भूमौ चरन्नस्माक स्वामिनमधिक्षिपसि । तन्न क्षन्तव्यमिदानीम् । इत्युक्त्वा ते सर्वे मां चञ्चुभिर्हत्वा सकोपा जचु. । पश्य रे मूर्ख, हसस्तव राजा सर्वथा मृदुः । तस्य राज्येऽधिकार एव नास्ति । यत एकान्ततो मृदु. करतलगतमप्यर्थं रक्षितुमक्षमः । कथ स पृथिवीं शास्ति । राज्य वा तस्य किम् । त्व च कूपमण्डूकस्तेन तदा-श्रयमुपदिशसि । मयोक्तम् । स एवास्मत्प्रभू राजहसो महाप्रतापोऽति-समर्थ· । त्रैलोक्यस्यापि प्रभुत्व तत्र युज्यते, किमुत राज्यम् । ततोह तैः पक्षिभिर्दुष्ट, कथमस्मद्भूमौ चरसीत्यभिधाय राज्ञश्चित्रवर्णस्य समीप नीतः । ततो राज्ञः पुरो मा प्रदर्श्य तै· प्रणम्योक्तम् । देव, अवधीयतामेष दुष्टो वको यदस्मद्देशे चरन्नपि देवपादानधिक्षिपति । राजाह । कोऽयम् ? कुतः समागतः ? त ऊचुः । हिरण्यगर्भनाम्नो राजहंसस्यानुचरः कर्पूरद्वीपादागतः । अथाह गृध्रेण मन्त्रिणा पृष्टः । कस्तत्र मुख्यो मन्त्रीति । मयोक्तम् । सर्वशास्त्रार्थपारगः सर्वज्ञो नाम चक्रवाक. ।

गृध्रो ब्रूते । युज्यते । स्वदेशजोऽसौ । अत्रान्तरे शुकेनोक्तम् । देव, कर्पूरद्वीपादयो लघुद्वीपा जम्बुद्वीपान्तर्गता एव । तत्रापि देवपादानामेवाधिपत्यम् । ततो राज्ञाप्युक्तम् । एवमेव । ततो मयोक्तम् । यदि वचनमात्रेणैवाधिपत्य सिद्धयति तदा जम्बुद्वीपेऽप्यस्मत्प्रभोर्हिरण्यगर्भस्य स्वाम्यमस्ति । शुक उवाच । कथमत्र निर्णयः ? मयोक्तम् । सङ्ग्राम एव । राज्ञा विहस्योक्तम् । स्वस्वामिनं गत्वा सज्जीकुरु । तदा मयोक्तम् । स्वदूतोऽपि प्रस्थाप्यताम् । राजोवाच । कः प्रयातु दौत्येन ? गृध्रो वदति । सन्त्येव दूता बहवः । किन्तु ब्राह्मण एव कर्तव्यः । राजाह । ततः शुक एव व्रजतु । शुक, त्वमेवानेन सह गत्वाभिलषितं ब्रूहि । शुको ब्रूते । यथाज्ञापयति देव. । किन्त्वयं दुर्जनो वकः । तदनेन सह न गच्छामि । ततो मयोक्तम् । भ्रातः शुक, किमेव ब्रवीषि ? मां प्रति यथा श्रीमद्देवपादास्तथा भवानपि । शुकेनोक्तम् । अस्त्वेवम् । किन्तु दुर्जनत्व च भवतो वाक्यादेव ज्ञात यदनयोर्भूपालयोर्विग्रहे भवद्वचनमेव निदानम् । ततोऽहं तेन राज्ञा यथान्यवहारं सम्पूज्य प्रस्थापितः । शुकोऽपि मम पश्चादागच्छन्नास्ते । एतत्सर्व परिज्ञाय यथाकर्तव्यमनुसन्धीयताम् ।

[ हितोपदेशे ]

---

**प्रश्नाः**—केषामधिपति स राजहंस ? केन कारणेन चित्रवर्णस्यानुचराः कुपिता. ? कथं दीर्घमुखो राज्ञश्चित्रवर्णस्य समीप नीत ? कथं शुकेन कलहाग्निर्वर्धितः ? को दूतो राज्ञा चित्रवर्णेन प्रेषित ? किमर्थं स दीर्घमुखेन सह नागच्छत् ?

शब्दप्रयोगाः—आख्यातुकाम दीर्घमुख —आख्यातुमिच्छन् दीर्घमुख ।

| | | | |
|---|---|---|---|
| तद्वदेव—गन्तुकाम | पथिक | प्रस्थातुकाम | —— |
| योद्धुकाम | —— | गातुकाम | —— |
| पठितुकाम | —— | —— —— | बालक । |
| —— | पुरोहित. | पतिं —— | जानकी । |

( उपरिनिर्दिष्टा शब्दा वाक्येषु प्रयोक्तव्या । )

समासाः—देशान्तरम्—अन्य देश देशान्तरम् । ( कर्मधारय )

तथैव—भाषान्तरम्, कथान्तरम्, सिंहान्तरम्, इत्यादय ।

( एते समासा सदा नपुसकलिङ्गा । )

पक्षिराज —पक्षिणा राजा पक्षिराज । तथैव महाराज , रसराज , मृगराज ।

---

# नवमः पाठः ।

## व्यसनविमोक्षः ।



अस्ति कस्मिंश्चिद् ग्रामे धनिको रत्नपालो नाम । स च बाल्यात्प्रभृत्येव संरूढदुर्जनसंसर्गो मद्य पातुमारेभे । यौवने पुनः समुपाचिनोद् व्यसनमेनदेतस्य । तत्र चातिमात्रमासक्तोऽयमभ्यभूयत केनापि रोगेण । तथापि क्षणमात्रमपि न सेहे विरह मदिरायाः । स्वभावो ह्यय व्यसनाना यदात्मन्यासक्तानेकान्ततो वशीकुर्वन्त्येतानीति । नैव किलोत्पादयन्ति विराग नाम ।

अथैकदातिभूमिं गत व्याधिमिम चिकित्सितुमाहूतः प्रज्ञाधनो नाम भिषक्प्रवरो रत्नपालमवादीत् । भद्र ! परित्यज्यतां जीवितहानिप्रदोऽयं मदिरास्वादाभिलाष इति । स पुनर्मूढमतिः, वैद्यराज ! वरं मे मरण



न पुनर्मदिरापरित्याग इति प्रतिजगाद । तदाकर्ण्य यथार्थनामा प्रज्ञाधनो विचिन्त्यावादीत् । श्रेष्ठिन् ! भवत्वेवम् किन्तु मयोपदिश्यमानेनैव विधिना सेव्यता मद्यमिति । अथ तथेति रत्नपालेनाङ्गीकृते प्रज्ञाधनः प्रतिदिन-मेकवृद्ध्या गुटिकाः समर्प्य निदिदेश । भद्रमुख, अतःपरमपरिवर्त्य कूपीमेककूपीमात्रमेव सेव्यतां प्रतिदिन मद्यम् । प्रथम तावद्गुटिका-कूपिकाया निक्षिप्य ततोऽसौ पूर्यता मद्येन । ततोऽधिक तु नासेवनीयं कदाचिदपि । तद्धि समासेव्यमानमपहरिष्यति प्राणानिति । अथ यथा यथा ववृधिरे गुटिकास्तथा तथा रत्नपालस्य तदनुरागेण सह मद्यमपि जग्हास । कतिपयैस्तु दिवसैर्गुटिकाभिः कूपिकाभ्यन्तरं नीरन्ध्रितमासीत् । प्रापच्च नि.शेषता व्यसन रत्नपालस्य । प्राशाम्यच्च 'संक्षेपतः क्रियायोगो निदानपरिवर्जनम्' इति न्यायात्तदीयो व्याधि' ।

परिहर्तुं न तु शक्य युगपद् व्यसन सुदूरहृतहृदयम् ।
क्रमशस्तु हाप्यमान सुखेन सक्षीणता याति ॥ १ ॥

[ सस्कृतचन्द्रिकायाम् ]

---

**प्रश्ना**'—कथ रत्नपालस्य मद्यपानव्यसन सरूढम् ? क' स्वभावो व्यसनानाम् ? का युक्तिर्योजिता प्रज्ञाधनेन रत्नपालस्य व्यसननिवारणाय ? गुटिकावर्धनात् किं किं क्षयमुपगतम् ? कथ तर्हि व्यसनानि परिहर्तव्यानि ?

**समासाः**—( १ ) सरूढदुर्जनससर्ग । प्रज्ञाधन । नीरन्ध्रितम । निदानपरि-वर्जनम । सुदूरहृतहृदयम । ( एतेषा समासाना विग्रहान् कृत्वा नामानि कथयत । )

( २ ) स्वभावो ह्यय व्यसनानाम् ।

अतिभूमिं गत व्याधिम .. ।

न सेहे विरह मदिराया ।

गुटिकाभिः प्रपूरिताया कूपिकाया मद्यस्य अवकाशो नास्ति ।

( अधोरेखिताना शब्दाना समासा क्रियन्ताम् । )

**प्रयोगान्तराणि**—( १ ) परिहर्तुं न तु शक्य युगपद् व्यसनं सुदूरहृत-हृदयम् । ( कर्तरि ) । ( २ ) प्राशाम्यद् रत्नपालस्य व्याधि । ( अत्र 'रत्नपाल' इति पद कर्तृपदे प्रयोक्तव्यम् । ) । ( ३ ) स मिषग्वरो यथार्थनामा आसीत् । ( कर्तृस्थाने 'नाम' इति पद प्रयोज्यम् । ) । ( ४ ) अयमभ्यभूयत केनापि रोगेण । ( कर्तरि ) ।

---

# दशमः पाठः ।

## सदुपदेशः

त्रिषु देवेषु महान्त मृगुर्बुभुत्सुः परीक्ष्य हरिमेकम् ।
मेनेऽधिक महिम्ना सेव्यः सर्वोत्तमो विष्णुः ॥ १ ॥
निर्वासितो हितेप्सुर्विभीषणो रावणेन लङ्कायाः ।
तन्नाशहेतुरासीन्नहि निजवन्धुर्निरोद्धव्यः ॥ २ ॥
हृतराज्यदर्पसारं सुयोधनं निग्रहीतुमपि शक्ताः ।
प्रोषुर्वनेषु पार्था धीर. समय प्रतीक्षेत ॥ ३ ॥
सहधर्मिणीं वनान्ताद्दशरथसूनोर्जहार दशवक्त्रः ।
वन्धनमाप समुद्रो न दुर्जनस्यान्तिके निवसेत् ॥ ४ ॥
सुग्रीवो रघुपतिना हृतदारेणोपगम्य हृतदारः ।
दृढमाववन्ध सख्य समानदुःखः सखा कार्यः ॥ ५ ॥
सन्दीपिताग्रपुच्छो वद्धतनुस्ताडितोऽपि रक्षोभिः ।
लङ्का मारुतिरदहद्विपदि विजह्यान्न शूरत्वम् ॥ ६ ॥
शतयोजनततमब्धिं विलङ्घ्य वातात्मजोऽविशल्लङ्काम् ।
वीराग्रतःसरोऽभूद्यशोऽर्जयन् साहसं कुर्यात् ॥ ७ ॥

अदिशद्रुक्मणहेतोर्मारुतिमानेतुमोपर्वी रामः ।
तामानयत् स दूराद्भुर्यः कार्ये नियोक्तव्य ॥ ८ ॥
हन्तु देवकतनया वसुदेवेनोद्यतायुधः कस· ।
मधुरोक्तिभिरनुनीतः साम्ना मूर्खं वशे कुर्यात् ॥ ९ ॥
शिशुपाल क्रतुकाले हरिमर्ह गर्हयन्ननर्होक्त्या
तत्क्षणमियाय नाश न महान्त कापि गर्हेत ॥ १० ॥
सङ्कुप्य पादघातं कालिन्द्या कालिय कृतागस्कम् ।
निरयापयन् मुकुन्दो दुष्टे दण्ड. प्रयोक्तव्यः ॥ ११ ॥
निगमागमैकवेत्ता द्रोणस्तप्त्वा तपोऽर्थमन्विच्छन् ।
धानुष्कवृत्तिरासीद्धर्मे चार्ये च सेवेत ॥ १२ ॥
अधिशम्भुमौलि निवसन्नेककलात्मा यथार्च्यते चन्द्रः ।
न तथा स पूर्णबिम्बः श्रयेन्महान्त महत्त्वाय ॥ १३ ॥
पृथुकोपहारपाणिर्हरिं सखाय प्रपद्य दीनात्मा ।
श्रीमानभूत् सुदामा श्रयेत सन्मित्रमापत्सु ॥ १४ ॥
शप्त्वाम्बरीषमार्य दुर्वासाः कोपनो निरागस्कम् ।
चक्रेण तापितोऽभून्न विदध्यात् क्रोधमस्थाने ॥ १५ ॥
युधि कुरवः कृतवैरा वीरं व्यूह विशन्तमभिमन्युम् ।
बहवो निजघ्नुरेक नैको रिपुमण्डल प्रविशेत् ॥ १६ ॥
क्षात्र विमृश्य धर्म मान्यैर्गुरुभिर्द्विजै सम समरे ।
युयुधेऽर्जुनो धनुष्मान् घोरमपि स्व चरेद्धर्मम् ॥ १७ ॥
शरतल्पमधिशयानाद्भीष्मादाकर्ण्य धर्मजो धर्मान् ।
दुःख जहौ दुरन्त प्रष्टव्याः सत्पथ वृद्धाः ॥ १८ ॥
हरिरम्बुधिमथनोत्था सुधा सुरेभ्यः सुरा सुरारिभ्यः ।

व्यतरत् सम यथार्हं योग्यं योग्याय दातव्यम् ॥ १९ ॥
मातुर्वाक्शरविद्धः पञ्चाब्दो दुष्करं तपस्तप्त्वा ।
ध्रुव उच्चैः पदमभजत् पुसा व्यवसायिना भाव्यम् ॥ २० ॥

[ उपदेशशतके ]

**काव्यवृत्तम्**—इदमार्यावृत्त भवति । तथा हि आर्यालक्षणम्—

यस्या पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या ॥ १ ॥

दीर्घवर्णस्य द्वे मात्रे, ह्रस्वस्य चैका मात्रा गण्यते ।

श्लोकस्य चत्वार पादा सन्ति । यथा—

| | |
|---|---|
| क्षात्र विमृश्य धर्मं | मान्यैर्गुरुभिर्द्विजै सम समरे । |
| २+२ + १+२+१ + २+२ | २+२+१+१+२+१+२ +१+२ + १+१+२ |
| ( १२ ) | ( १८ ) |
| युयुधेऽर्जुनो धनुष्मान् | घोरमपि स्व चरेद्धर्मम् ॥ १७ ॥ |
| १+१+२+१+२ + १+२+२ | २+१+१+२ + २ + १+२+२+२ |
| ( १२ ) | ( १५ ) |

**सामान्यनीतिः**—प्रथमे श्लोके 'सेव्य सर्वोत्तमो विष्णु' इति कस्या· कथायास्तात्पर्यं कविनोद्धृतम् ? ( एतादृशानि सामान्यनीतिवाचकानि वाक्यानि प्रदर्शयत । )

**प्रयोगविशेषाः**—१ निर्वासितो विभीषणो रावणेन । २ कालीय निरयापयन्मुकुन्दः । ३ द्रोणो धानुष्कवृत्तिरासीत् । ४ पुसा व्यवसायिना भाव्यम् । ( एतेषामभिप्रायो विशदीक्रियताम् । )

# एकादशः पाठः ।

## स्वामिभक्तिः ।

अथ वीरवरो नाम राजपुत्रः कुतश्चिद्देशादागत्य राजद्वारमुपगम्य प्रतीहारमुवाच । अहं तावद्दर्शनार्थी राजपुत्र । राजदर्शनं कारय । ततस्तेनासौ राजदर्शनं कारितो ब्रूते । देव, यदि मया सेवकेन प्रयोजनमस्ति तदस्मद्दर्शनं क्रियताम् ।

शूद्रक उवाच—किं ते वर्तनम् ?

वीरवरो ब्रूते—प्रत्यहं सुवर्णचतुष्टयम् ।

राजाह—का ते सामग्री ?

वीरवरो ब्रूते—द्वौ बाहू तृतीयश्च खड्ग ।

राजाह—नैतच्छक्यम् ।

तच्छ्रुत्वा वीरवर प्रणम्य चलितः । अथ मन्त्रिभिरुक्तम् । देव, दिनचतुष्टयस्य वर्तनं दत्त्वा ज्ञायतामस्य स्वरूपम् । किमुपयुक्तोऽयमेतावद्वर्तनं गृह्णात्यनुपयुक्तो वेति । ततो मन्त्रिवचनादाहूय वीरवराय ताम्बूलं दत्त्वा सुवर्णचतुष्टयं दत्तम् । तद्विनियोगश्च राज्ञा सुनिभृतं निरूपितः । तदर्धं वीरवरेण देवेभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च दत्तम् । स्थितस्यार्धं दुःखितेभ्यः । तदवशिष्टं भोज्यव्ययविलासव्ययेन व्ययितम् । एतत्सर्वं नित्यकृत्यं कृत्वा राजद्वारमहर्निशं खड्गपाणिः सेवते । यदा च राजा स्वयं समादिशति तदा स्वगृहमपि याति ।

अथैकदा कृष्णचतुर्दश्यां रात्रौ राजा सकरुणं क्रन्दनध्वनिं शुश्राव ।

शूद्रक उवाच—कः कोऽत्र द्वारि ?

तेनोक्तम्—देव, अहं वीरवरः ।

राजोवाच—क्रन्दनानुसरण क्रियताम् ।

वीरवरो यथाज्ञापयति देव इत्युक्त्वा चलितः । राज्ञा च चिन्तितम् । नैतदुचितम् । अयमेकाकी राजपुत्रो मया सूचीभेद्ये तमसि प्रेरितः । तदनुगत्वा किमेतदिति निरूपयामि । ततो राजापि खड्गमादाय तदनुसरणक्रमेण नगराद्बहिर्निर्जगाम । गत्वा च वीरवरेण सा रुदती रूपयौवनसम्पन्ना सर्वालङ्कारभूषिता काचित् स्त्री दृष्टा पृष्टा च । का त्वम् । किमर्थं रोदिषीति । स्त्रियोक्तम् । अहमेतस्य शूद्रकस्य राज्ञो लक्ष्मीः । चिरादेतस्य भुजच्छायायां महता सुखेन विश्रान्ता । इदानीमन्यत्र गमिष्यामि । वीरवरो ब्रूते । यत्रापायः सम्भवति तत्रोपायोऽप्यस्ति । तत्कथ स्यात् पुनरिहालम्बन भगवत्याः ? लक्ष्मीरुवाच । यदि त्वमात्मनः पुत्र शक्तिधरं द्वात्रिंशल्लक्षणोपेतं भगवत्याः सर्वमङ्गलाया उपहारीकरोषि तदाह पुनरत्र सुचिरं सुखं निवसामि । इत्युक्त्वादृश्याभवत् ।

ततो वीरवरेण स्वगृह गत्वा निद्राणा स्ववधूः प्रबोधिता पुत्रश्च । तौ निद्रा परित्यज्योत्थायोपविष्टौ । वीरवरस्तत्सर्वं लक्ष्मीवचनमुक्तवान् । तच्छ्रुत्वा सानन्दः शक्तिधरो ब्रूते । धन्योऽहमेवम्भूतः स्वामिराज्यरक्षार्थं यस्योपयोगः । तत्तात, कोऽधुना विलम्बस्य हेतुः ? कदापि तावदेवंविध एव कर्मण्येतस्य देहस्य विनियोगः श्लाघ्यः । यतः—

धनानि जीवित चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत् ।
सन्निमित्त वरं त्यागो विनाशे नियते सति ॥ १ ॥

शक्तिधरमातोवाच । यद्येतन्न कर्तव्यं तत्केनान्येन कर्मणा मुख्यस्य महावर्तनस्य निष्क्रयो भविष्यति । इत्यालोच्य सर्वे सर्वमङ्गलायाः स्थानं



गताः । तत्र सर्वमङ्गलां सम्पूज्य वीरवरो ब्रूते । देवि, प्रसीद । विजयतां विजयता शूद्रको महाराजः । गृह्यतामयमुपहारः । इत्युक्त्वा पुत्रस्य शिरश्चिच्छेद । ततो वीरवरश्चिन्तयामास, गृहीतराजवर्तनस्य तावन्निस्तारः कृतः । अधुना निष्पुत्रस्य मे जीवन विडम्बनम् । इत्यालोच्यात्मनः शिरश्छिन्नवान् । ततः स्त्रियापि स्वामिनः पुत्रस्य च शोकार्तया तदनुष्ठितम् । एतत्सर्वं श्रुत्वा दृष्ट्वा च स राजा साश्चर्यं चिन्तमायास ।

जीवन्ति च म्रियन्ते च मद्विधाः क्षुद्रजन्तवः ।
अनेन सदृशो लोके न भूतो न भविष्यति ॥ २ ॥

तदेतत्परित्यक्तेन मम राज्येनाप्यप्रयोजनम् । ततः स्वशिरश्छेत्तु-मुल्लासितः खड्गः शूद्रकेणापि । अथ भगवत्या सर्वमङ्गलया प्रत्यक्षभूतया राजा हस्ते धृत उक्तश्च । पुत्र, प्रसन्नास्मि ते । एतावता साहसेनालम् । जीवनान्तेऽपि तव राज्यभङ्गो नास्ति । राजा च साष्टाङ्गपातं प्रणम्योवाच । देवि, किं मे राज्येन । जीवितेन वा किं प्रयोजनम् । यद्यहमनुकम्पनीयस्तदा ममायुःशेषेणाय सदारपुत्रो वीरवरो जीवतु । अन्यथाहं यथाप्राप्तां गतिं गच्छामि । भगवत्युवाच । पुत्र, अनेन ते सर्वोत्कर्षेण भृत्यवात्सल्येन च सर्वथा सन्तुष्टास्मि । गच्छ विजयी भव । अयमपि सपरिवारो राजपुत्रो जीवतु । इत्युक्त्वा देव्यदृश्याभवत् । ततो वीरवरः सपुत्रदारः प्राप्तजीवनः स्वगृहं गतः । राजापि तैरलक्षितः सत्वरं प्रासादगर्भं गत्वा तथैव सुप्तः ।

अथ वीरवरो द्वारस्थः पुनर्भूपालेन पृष्टः सस्मुवाच । देव, सा रुदती स्त्री मामवलोक्यादृश्याभवत् । न काप्यन्या वार्ता विद्यते ।

तद्वचनमाकर्ण्य सन्तुष्टो राजा साश्चर्यमचिन्तयत्, कथमयं श्लाघ्यो महासत्त्वः । यतः—

प्रिय ब्रूयादकृपण. शूरः स्यादविकत्थन
दाता नापात्रवर्षी च प्रगल्भः स्यादनिष्ठुर. ॥ ३ ॥

एतन्महापुरुषलक्षणमेतस्मिन् सर्वमस्ति । ततः स राजा प्रात· शिष्ट-सभा कृत्वा सर्ववृत्तान्त प्रस्तुत्य प्रसादात्तस्मै कर्नाटराज्यं ददौ ।

[ हितोपदेशे ]

---

**प्रश्नाः**—किमर्थं राजदर्शनाय गतो वीरवर ? क समय कृतस्तेन राज्ञा सह ? कथ प्रथमदिनस्य वर्तन वीरवरेण व्ययितम् ? रात्रौ राज्ञा प्रेरितो वीरवर किमपश्यत् ? क उपाय कथितो राजलक्ष्म्या पुनर्निवासाय ? तदा वीरवरेण किं कृतम् ? तत्तस्य चेष्टित दृष्ट्वा शूद्रकेण किमारब्धम् ?

**स्वभावपरिचयः**—वीरवरस्य, शूद्रकस्य, वीरवरपत्न्याश्च स्वभावान् वर्णयत ।

**प्रयोजकानि ( णिचि ) क्रियापदानि—**

| ( शुद्धान्तवाक्यम् ) | ( प्रयोजकवाक्यम ) |
|---|---|
| १ वीरवरो राजदर्शन करोति । | प्रतीहारो वीरवरेण वीरवर वा राज-दर्शन कारयति । |
| २ योद्धार. स्वर्गं गच्छन्ति । | देवो योद्धून् स्वर्ग गमयति । |
| ३ कन्दुको भूमौ पतति । | कुमार कन्दुक भूमौ पातयति । |
| ४ जलं क्षेत्रे प्रसरति । | कृषीवलो जलं क्षेत्रे प्रसारयति । |
| ५ मयूरो नृत्यति । | मेघा मयूर नर्तयन्ति । |
| ६ वनस्पति शुष्यति । | निदाघो वनस्पतिं शोषयति । |
| ७ वनस्पति पुष्यति । | पर्जन्यो वनस्पतिं पोषयति । |
| ८ हस्तो मुखे प्रविशति । | कुमारो हस्त मुखे प्रवेशयति । |
| ९ बालक स्वपिति । | माता बालक स्वापयति । |

( भूत–भविष्यत्कालेऽपि प्रयोजकः )

| | |
|---|---|
| १ पृथ्वी सलिले आस्त । | देव. पृथ्वीं सलिले आसयत् । |
| २ दत्या· समरे अनश्यन् । | रामो दैत्यान् समरे अनाशयत् । |
| ३ विष्णुः प्रावोधत् । | निर्जरा विष्णुं प्रायोधयन् । |
| ४ जना कामेन मुह्यन्ति मोहिष्यन्ति च । | कामो जनान् मोहयति मोहयिष्यति च । |
| ५ वृक्षो रोहति–अरोहत्–रोक्ष्यति । | मालाकारो वृक्ष रोहयति रोपयति वा– अरोहयत् अरोपयत् वा–रोहयिष्यति रोपयिष्यति वा । |
| ६ सीता गोदावर्यां अस्नात् । | राम सीता गोदावर्यां अस्नापयत् । |
| ७ चन्द्र क्षयति ग्लयति च । | विधिश्चन्द्र क्षपयति ग्लपयति च । |
| ८ मन्दर सागरे तिष्ठति । | देवा मन्दर सागरे स्थापयन्ति । |

---

# द्वादशः पाठः ।

## वटूनां स्वैरालापः ।

एकः—सौधातके दृश्यतामद्य भूयिष्ठसन्निवापितातिथिजनस्य समधिकारम्भरमणीयता भगवतो वाल्मिकेराश्रमपदस्य । तथाहि—

नीवारौदनमण्डमुष्णमधुरं सद्यः प्रसूताप्रिया—
पीताद्भ्यधिक तपोवनमृगः पर्याप्तमाचामति ।
गन्धेन स्फुरता मनागनुसृतो भक्तस्य सर्पिष्मतः
कर्कन्धूफलमिश्रशाकपचनामोदः परिस्तीर्यते ॥ १ ॥

सौधातकिः—स्वागतमनेकप्रकाराणां जीर्णकूर्चानामनध्यायकारणानाम्।

प्रथमः—( विहस्य ) अपूर्वः कोऽपि ते बहुमानहेतुर्गुरुषु सौधातके।

सौधातकिः—भो दाण्डायन, किन्नामधेय एष महतः स्थविरसार्थस्य धुरन्धरोऽद्यातिथिरागतः।

दाण्डायनः—धिक् प्रहसनम्। नन्वयमृष्यशृङ्गाश्रमादरुन्धतीपुरस्कृतान् महाराजदशरथस्य दारानधिष्ठाय भगवान्वसिष्ठः प्राप्तः। तत्किमेव प्रलपसि ?

सौधातकिः—हु वसिष्ठः।

दाण्डायनः—अथ किम्।

सौधातकिः—मया पुनर्जात व्याघ्रो वा वृको वैष इति।

दाण्डायनः—आः किमुक्त भवति।

सौधातकिः—तेन परापतितेनैव सा वराकी कपिला कल्याणी मडमडायिता।

दाण्डायनः—'समासो मधुपर्कः' इत्याम्नाय बहुमन्यमानाः श्रोत्रियायाभ्यागताय वत्सतरीं महोक्षं महाजं वा निर्वपन्ति गृहमेधिनः। त हि धर्मे धर्मसूत्रकारा. समामनन्ति।

सौधातकिः—भो निगृहीतोऽसि।

दाण्डायनः—कथमिव।

सौधातकिः—येनागतेषु वसिष्ठमिश्रेषु वत्सतरी विशसिता। अद्यैव प्रत्यागतस्य राजर्षेर्जनकस्य भगवता वाल्मीकिना दधिमधुभ्यामेव निर्वर्तितो मधुपर्कः। वत्सतरी पुनर्विसर्जिता।

दाण्डायनः—अनिवृत्तमासानामेव कल्पमृषयो मन्यन्ते। निवृत्तमांसस्तु तत्रभवाञ्जनकः।

सौधातकिः—किं निमित्तम्?

दाण्डायनः—स तदैव देव्याः सीतायास्तादृशं दैवदुर्विपाकमुपश्रुत्य वैखानसः संवृत्तः। तथास्य कतिपये संवत्सराश्चन्द्रद्वीपतपोवने तपस्तप्यमानस्य।

सौधातकिः—ततः किमित्यागतः।

दाण्डायनः—चिरन्तनप्रियसुहृद् भगवन्त प्राचेतसं द्रष्टुम्।

सौधातकिः—अप्यद्य सम्बन्धिनीभिः समं संवृत्तमस्य दर्शनं न वेति।

दाण्डायनः—सम्प्रत्येव भगवता वसिष्ठेन देव्याः कौसल्यायाः सकाशं भगवत्यरुन्धती प्रहिता यत्स्त्रयमुपेत्य वैदेहो द्रष्टव्य इति।

सौधातकिः—यथैते स्थविराः परस्परं मिलितास्तथावामपि वटुभिः सह मिलित्वानध्यायमहोत्सव खेलन्तौ मानयावः।

[ उत्तररामचरिते ]

---

**नाट्यम्**—एष सवाद कुमाराभ्या छात्रगणाभ्यां वा नाटयितव्य।

**वर्णनम्**—शिष्टागमने य. कोऽपि समारम्भो वाल्मीकेराश्रमपदे कृतस्तस्य वर्णन क्रियताम्। किं पुन. स्वरूपमेतादृशस्य समारम्भस्य नगरे दृश्यते।

**स्वभाववर्णनम्**—कीदृश स्वभाव. सौधातके। एतयोश्छात्रयोः कतरः पुन. परिणतबुद्धिर्दृश्यते।

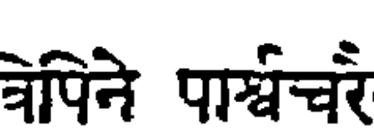
**वृत्तम्**—प्रथमश्लोकस्य वृत्तं कथ्यताम्।

| प्रयोजकानि<br>( शुद्धान्तवाक्यानि ) | ( प्रयोजकवाक्यानि ) |
|---|---|
| १ कुमारो देव नमति । | पिता कुमारेण देव नमयति नामयति वा । |
| २ वल्ल ओदनं पचति । | स्वामी वल्लवेन ओदन पाचयति । |
| ३ दशरथो भरताय राज्य यच्छति । | कैकेयी दशरथेन भरताय राज्यं दापयति । |
| ४ हनूमान् राक्षसान् हन्ति । | रामो हनुमता राक्षसान् घातयति । |
| ५ अश्वा जल पिबन्ति । | सारथि अश्वान् जल पाययति । |
| ६ वृक्षात् फलानि जायन्ते । | वृक्ष· फलानि जनयति । |
| ७ रामो यज्ञम आरभते । | वसिष्ठो रामेण यज्ञम आरम्भयति । |
| ८ युधिष्ठिरो राज्य लभते । | श्रीकृष्णो युधिष्ठिरेण राज्यं लम्भयति । |
| ९ पाण्डवाः कौरवान् जयन्ति । | श्रीकृष्ण पाण्डवै कौरवान् जापयति । |
| १० सेवको भारं नयति वहति वा । | स्वामी सेवकेन भार नाययति वाहयति वा । |
| ११ भरत. प्रजा पाति । | वसिष्ठो भरतेन प्रजा पालयति । |
| १२ भृत्य कार्यं करोति । | स्वामी भृत्येन भृत्य वा कार्य कारयति । |
| १३ बाला पुष्पाणि क्रीणाति । | माता बाल्या पुष्पाणि क्रापयति । |

---

# त्रयोदशः पाठः ।

## श्रावणवधः ।



अथ जातु स्वरोर्गृहीतवर्त्मा विपिने पार्श्वचरैरलक्ष्यमाणः ।
श्रमफेनमुचा तपस्विगाढां तमसां प्राप नदीं तुरङ्गमेण ॥ १ ॥
कुम्भपूरणभवः पटुर्न्वैस्त्वचार निनदोऽम्भसि तस्याः ।
तत्र स द्विरदबृंहितशङ्की शब्दपातिनमिषु विससर्ज ॥ २ ॥

नृपतेः प्रतिषिद्धमेव तत् कृतवान् पङ्क्तिरथो विलङ्घ्य यत्।
अपथे पदमर्पयन्ति हि श्रुतवन्तोऽपि रजोनिमीलिता. ॥ ३ ॥

हा तातेति क्रन्दितमाकर्ण्य विपण्ण-
स्तस्यान्विष्यन् वेतसगूढं प्रभवं सः।
शल्यप्रोतं प्रेक्ष्य सकुम्भ मुनिपुत्रं
तापादन्तः शल्य इवासीत् क्षितिपोऽपि ॥ ४ ॥
तेनावतीर्य तुरगात् प्रथितान्वयेन
पृष्टान्वयः स जलकुम्भनिपण्णदेहः।
तस्मै द्विजेतरतपस्विसुत स्खलद्भि-
रात्मानमक्षरपदैः कथयाम्बभूव ॥ ५ ॥
तच्चोदितश्च तमनुद्धृतशल्यमेव
पित्रोः सकाशमवसन्नदृशोर्निनाय।
ताभ्या तथागतमुपेत्य तमेकपुत्र-
मज्ञानतः स्वचरित नृपतिः शशंस ॥ ६ ॥
तौ दम्पती बहु विलप्य शिशो' प्रहर्त्रा
शल्य निखातमुदहारयतामुरस्तः।
सोऽभूत् परासुरथ भूमिपतिं शशाप
हस्तार्पितैर्नयनवारिभिरेव वृद्धः ॥ ७ ॥
दिष्टान्तमाप्स्यति भवानपि पुत्रशोका-
दन्त्ये वयस्यहमिवेति तमुक्तवन्तम्।
आक्रान्तपूर्वमिव मुक्तविष भुजङ्ग
प्रोवाच कोसलपति' प्रथमापराद्धः ॥ ८ ॥

२ वीररस —चत्वारो वयमृत्विज. स भगवान् कर्मोपदेष्टा हरि
सद्ग्रामाध्वरदीक्षितो नरपति· पत्नी गृहीतव्रता ।
कौरव्या· पशव प्रियापरिभवक्लेशोपशान्ति· फल
राजन्योपनिमन्त्रणाय रसति स्फीत यशोदुन्दुभि ॥ २ ॥

३ करुणरस.—पातु न प्रथम व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवता स्नेहेन या पल्लवम् ।
आद्ये व· कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सव
सेय याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ॥ ३ ॥

४ अद्भुतरस —अम्बुजमम्बुनि जात नहि दृष्ट जातमम्बुजादम्बु ।
अधुना तद्विपरीत चरणाम्बुजतो विनिर्गता गङ्गा ॥ ४ ॥

५ हास्यरस·—सहस्रास्यो नागः प्रभुरपि मत. पञ्चवदन
षडास्यो हन्तैकस्तनय इतरो वारणमुख ।
सदा भैक्ष्यशश्वत्प्रभवतु कथ वर्तनमिति
श्वसन्त्यां पार्वत्यामथ जयति शम्भु स्मितमुख ॥ ५ ॥

**काव्यवृत्तम्**—अस्मिन् काव्ये १, ३, ५–११ श्लोकाना वृत्तानि कथयत ।
द्वितीयश्लोकस्य वृत्तम्—स्वागता । ( स्वागता रनभगैर्गुरुणा च । )

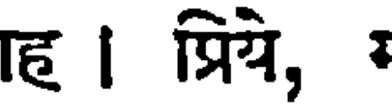
| र | न | भ | गु गु |
|---|---|---|---|
| कुम्भपू | रणभ | व पदु | रुचै । |

चतुर्थश्लोकस्य वृत्तम्—मत्तमयूर । ( वेदैरन्ध्रैर्मतौ यसगा मत्तमयूरः । )

| म | त | य | स | ग |
|---|---|---|---|---|
| हा तावे | ति क्रन्दि | तमाक | र्ण्य विप | ण्ण । |

# चतुर्दशः पाठः ।

## स्वभावो दुरतिक्रमः ।



कस्मिंश्चिद्वनोद्देशे सिंहदम्पती प्रतिवसत स्म । अथ सिंही पुत्रद्वयमजीजनत् । सिंहोऽपि नित्यमेव मृगान् व्यापाद्य सिंह्यै ददाति । अथ कदाचित्तेन किमपि नासादितम् । वने भ्रमनोऽपि तस्य रविरस्तङ्गत । अथ तेन स्वगृहमागच्छता शृगालशिशुः प्राप्त । स च बालकोऽयमिति मत्वा यत्नेन दृष्टामव्यगत कृत्वा सिंह्यै जीवन्तमपि समर्पितवान् । तत. सिंह्याभिहितम् । भोः कान्त, आनीत किञ्चिदस्माक भोजनम् । सिंह आह । प्रिये, मयाद्यैन शृगालशिशु परित्यज्य न किञ्चित्सत्त्वमासादितम् । स च मया बालोऽयमिति मत्वा न व्यापादित । उक्त च—

स्त्रीलिङ्गिविप्रबालाना प्रहर्तव्य न कर्हिचित् ।
प्राणत्यागेऽपि सञ्जाते विश्वस्ताना विशेषत. ॥ १ ॥

' इदानीमेन भक्षयित्वा पव्यं कुरु । प्रभातेऽन्यदुपार्जयिष्यामि । साह । भो. कान्त, त्वया बालकोऽयमिति मत्वा न व्यापादित । तदह कथमेन स्वोदरार्थे व्यापादयामि । उक्त च—

अकृत्य नैव कृत्य स्यात्प्राणत्यागेऽपि सस्थिते ।
न च कृत्य परित्याज्यमेष धर्म. सनातन. ॥ २ ॥

'तस्मान्ममाय तृतीय· पुत्रो भविष्यति । इत्युक्त्वा तमपि स्वस्तनक्षीरेण पुष्टिमनयत् । एव ते त्रयोऽपि शिशव. परस्पराज्ञातजातिविशेषा एकत्र विहारिणो बाल्यमतिवाहयन्ति' । अथ कदाचित्तत्र वने



भ्राम्यन् वनगजो दृष्ट । तं दृष्ट्वा तौ सिंहसुतौ द्वावपि कुपिताननौ तं प्रति प्रचलितौ यावत्तावत्तेन शृगालसुतेनाभिहितम् । अहो, गजोऽयं युष्मत्कुलक्षयङ्करः । तन्न गन्तव्यमेतस्याभिमुखम् । एवमुक्त्वा गृहं प्रधावितः । तावपि ज्येष्ठत्रासान्निरुत्साहता गतौ । अथवा साध्विदमुच्यते ।

एकेनापि सुधीरेण सोत्साहेन रणं प्रति ।
सोत्साहं जायते सैन्यं भग्नं भङ्गमवाप्नुयात् ॥ ३ ॥
अत एव हि वाञ्छन्ति भूपा योधान् महाबलान् ।
शूरान् धीरान् कृतोत्साहान् वर्जयन्ति च कातरान् ॥ ४ ॥

ततो द्वावपि पित्रोरग्रतो विहसन्तौ ज्येष्ठभ्रातृचेष्टितमूचतुर्यया गजं दृष्ट्वा दूरतोऽपि नष्टः । सोऽपि तदाकर्ण्य कोपाविष्टः प्रस्फुरिताधरपल्लवस्ताम्रलोचनस्त्रिशिखीं भ्रुकुटिं कृत्वा तौ निर्भर्त्सयन् परुषवचनान्युवाच । ततः सिंहेकान्ते नीत्वा प्रबोधितः । वत्स, मैवं कदाचिज्जल्पः । मत्कीयलघुभ्रातरावेतौ । अथासौ प्रभूतकोपाविष्टस्तामित्युवाच । किमहमेताभ्यां शौर्यरूपेण विद्याभ्यासेन वा न्यूनो येन मामुपहसतः । तन्मयावश्यमेतौ व्यापादनीयौ । तदाकर्ण्य सिंही तस्य जीवितमिच्छन्ती प्राह ।

शूरोऽसि कृतविद्योऽसि दर्शनीयोऽसि पुत्रक ।
यस्मिन् कुले त्वमुत्पन्नो गजस्तत्र न हन्यते ॥ ५ ॥

परं शृगालसुतस्त्वं कृपया मया स्वकीयक्षीरपानेन पुष्टिं नीतः । तद्यावन्नेतौ त्वां शृगाल जानीतस्तावद् द्रुतं गत्वा स्वजातिमध्ये भव । नो चेदाभ्यां हतो मृत्युपथं समेष्यसि । सोऽपि तद्वचनं श्रुत्वा भयव्याकुलमनाः क्षणात्पलायितः ।

[ पञ्चतन्त्रे ]

**प्रश्नाः**—किन्निमित्तं सिंहेन स शृगालशिशुर्न व्यापादित ? केन भावेन सिंही तमपोषयत् ? गजमभिद्रवन्तौ तौ सिंहशिशू कस्मात्कारणान्निरुत्साहता गतौ ? किमर्थं सिंही तं शृगालशिशुमेकान्ते प्रावोधयत् ? किं तात्पर्यमस्य पाठस्य ?

**आभाणकाः**—'अत एव हि वाञ्छन्ति भूपा योधान् महाबलान् ।
शूरान् धीरान् कृतोत्साहान् वर्जयन्ति च कातरान्' ॥

एतादृशा ये केऽप्याभाणका अस्मिन् पाठे दृश्यन्ते तान् विचिनुत ।

**प्रयोजकानि क्रियापदानि—**

| ( शुद्धान्तवाक्यानि ) | ( प्रयोजकवाक्यानि ) |
|---|---|
| १ शिष्या वेदानधीयते । | गुरु शिष्यान् वेदानध्यापयति । |
| २ आर्या वेदार्थमविदु· । | देवो वेदार्थमार्यानवेदयत् । |
| ३ जना धर्मं वोधन्ति । | आचार्या जनान् धर्मं वोधयन्ति । |
| ४ देवा अमृतमश्नन्ति । | भगवान् देवानमृतमाशयति । |
| ५ धेनुस्तृणमत्ति खादति वा । | गोपो धेन्वा तृणमादयति खादयति वा । |
| ६ भक्ता हरिं पश्यन्ति । | सद्गुरुर्भक्तान् हरिं दर्शयति । |
| ७ देवा गन्धर्वस्य गान शृण्वन्ति । | गन्धर्वो देवान् गान श्रावयति । |
| ८ अश्वा रथं वहन्ति नयन्ति वा । | सूतोऽश्वान् रथ वाहयति नाययति वा । |
| ९ चौरो धन हरति । | दुष्टश्चौरेण चौर वा धन हारयति । |
| १० भृत्य कट करोति । | स्वामी भृत्येन भृत्य वा कटं कारयति । |
| ११ देवैर्गन्धर्वस्य गानं श्रुतम् । | गन्धर्वेण देवा गानं श्राविता । |

# पञ्चदशः पाठः ।

## स्यमन्तकप्राप्तिः ।



पुरा किल वृष्णिवंशे सत्राजिन्नाम कोऽपि राजा बभूव । स बहु-काल सूर्योपासनामनुतिष्ठंस्तस्य प्रसादेन स्यमन्तक नाम तेजोगर्भं मणिं प्राप्नोत् । तस्य च माहात्म्यमेवमासीद्यद्यस्य सविधे स वर्तेत स पुरुषः प्रतिदिन दशभारं सुवर्णं लभेत । तथा यत्र च स स्थितिं लभेत तत्रानावृष्टिरन्यो वा कोऽप्युपद्रवो न जायेतेति । तादृशं त मणिं कण्ठे धारयन् सत्राजित् सहस्रांशुरिव व्यरोचत ।

यदुवंशप्रदीपः श्रीकृष्ण एवैन मणिं धारयितुमर्हति नान्योऽन. सम-र्प्यतां स तस्मा इति जनैरभ्यर्थितः सत्राजित्तं तस्मै नायच्छत् । स्वभ्रात्रे च प्रसेनाय स तमुपहारीचकार । अथैकदा प्रसेनस्त मणिं कण्ठे कृत्वा हयमारुह्य मृगयायै वनमगच्छत् । तत्र कोऽपि सिंह. प्रसेन हत्वा त स्यम-न्तकमणिमपजहार । ततो मणिभासुरं केसरिण हत्वा, ऋक्षराजो जाम्ब-वास्त मणिमगृह्णात् स्वगुहा च प्राविशत् । वनादनागतमात्मनो भ्रातरं वीक्ष्य सत्राजित् कृष्णेन मणिलोभात्स हत इति मिथ स्वजनेभ्योऽकथ-यत् । इयं च वार्ता कर्णोपकर्णिकया जनेषु प्रासरत् ।

अचिरेणैवाय वृत्तान्तो भगवतो वासुदेवस्य श्रुतिपथमगच्छत् । सत्रा-जित्कृतामात्मनो निन्दामसहमानः स तदलीकापवादप्रमार्जनाय प्रसेन-मन्वेष्टु प्रतस्थे । यस्मिन्वने मृगयार्थं प्रसेनो गतवास्तद्वनमसौ वासुदेव· प्राप्तवान् । तस्मिन्नरण्ये प्रसेनाश्वस्य पदचिह्नान्यभिज्ञाय तान्यन्वसरत् ।

तदनुरोधाद्वनाद्वनमटन् स कञ्चिल्प्रदेशं प्राप, यत्र केनापि मृगेन्द्रेण हतं साश्वं प्रसेन ददर्श । ततः स सिंहपदलाञ्छित पन्थानमनुसृत्य कञ्चन पर्वतप्रदेशमुपययौ । अनतिदूरे च त मृगेन्द्रं व्यापादितमपश्यत् । केनासौ व्यापादितो भवेदिति चिन्तयन् भगवान् वासुदेवस्तत्र भल्लूकपदचिह्नान्यपश्यत् । तान्यनुसरन् स समीपस्थां घनान्धकारच्छन्नां काञ्चन गुहा प्राविशत् । ततः सुदूरं गत ऋक्षराजस्य जाम्बवतो गृहं व्यलोकयत्तत्र च प्रथमकक्षाया दोलास्थितस्य कस्यापि बालकस्य रोदनस्वरमशृणोत् । तद्रोदनशब्दानुसारेणाग्रे गच्छन् भगवान् कृष्णः—

'सिंह' प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः ।
सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तक' ॥

इति श्लोकेन कुमारं लालयन्तीं दोलां सञ्चालयन्तीं च धात्रीं तत्रापश्यत् । सा धात्री तमदृष्टपूर्वं पुरुष दृष्ट्वा भयेन चुक्रोश । तच्छ्रुत्वा क्रुद्धो जाम्बवान् वहिरागत्य कस्त्वमिति भगवन्तं कृष्णमपृच्छत् । त्वयापहृतमेनमस्मदीय मणिं ग्रहीतुमत्रागतोऽस्मीति वासुदेवस्त प्रत्यभाषत । स्वपराक्रमेणार्जितमिमं स्यमन्तक न कदापि प्रदास्यामि । गम्यता यथागतम् । नो चेद्धन्तव्योऽसि मयेति जाम्बवानगर्जत् । ततस्तयोर्युध्यमानयोर्बहुकालो व्यतीतः ।

तदानीं रमणीललामभूता देवी रुक्मिणी, देवकी, वसुदेवो, बलभद्रोऽन्ये सुहृदश्च कृष्णस्य वार्तामश्रुत्वा भृश शोकार्ताः सत्राजितमगपन् । भगवान् कृष्णस्तु जाम्बवता सहाह्नामष्टविंशति नियुद्ध चकार । अन्ते परिश्रान्तः स ऋक्षराजो भूमावपतत् । तद्वक्षस्युपविश्य कृष्णस्तं मुष्टिना प्राहरत् । तदा केनाप्यपराजितः स जाम्बवांस्तस्मिन् बाहुयुद्धे इत्थं क्षीणक्षीणः स्विन्नगात्रो लुप्तसामर्थ्यश्चाभवद्यत् स स्वाराध्य श्रीराम-

चन्द्र भक्तिप्रवणेन चेतसा दध्यौ । भो रक्षःकुलनिषूदन, भक्तजनरक्षक, स्वामिन् रामचन्द्र ! अद्याहं केनाप्यपूर्वेण पुरुषविशेषेण पराजितो म्रिये । इदानीं मोपेक्षस्व । मा पाहि । न किमप्यन्यन्मे शरणम् । इति प्रार्थनापरोऽसौ यावत् स्थितस्तावद्भगवान् कृष्णो रामरूपेण तस्य दृग्विषयोऽभवत् । तेन नितान्त विस्मितो जाम्बवान् स्ववक्षःस्थित भगवन्तमित्थ प्रार्थयामास । त्व पुराणपुरुषो विष्णुरसि । त्वमेव पूर्वं रामावतारे रावणमवधीः । त्वमेव चास्य चराचरस्य विश्वस्य स्रष्टा । अज्ञानेन तव स्वरूपमजानता मया कृतमपराध क्षमस्वेति । तेन परितुष्टो वीरवरो वासुदेवस्तममुञ्चत् । ततो जाम्बवान् भक्तिप्रवणेन चेतसा त महापुरुषं विविधोपचारै. सम्पूज्य स्वदुहितरं जाम्बवतीं स्यमन्तक च तस्मायर्पयामास ।

ततो भगवान् कृष्णः स्यमन्तकमणिं कण्ठे धारयन्नवोढया जाम्बवत्या सह द्वारका प्रत्यागच्छत् । त दृष्ट्वा वसुदेवाद्याः सर्वे नितान्त प्रमुदिता बभूवु. । अनन्तर भगवान् कृष्ण. सभाया सत्राजित समाहूय वान्धवाना सन्निधौ मणेर्वृत्तान्तमकथयत् । त स्यमन्तक च तस्मै प्रायच्छत् । तेनातीव व्रीडाभिभूत सत्राजिदचिन्तयत् । अहो भगवन्त निन्दता मया न सम्यगनुष्ठितम् । किमिदानीं विधेयम् । कथ भगवान् वासुदेवो मय्यकल्पित. सन् मामनुगृह्णीयात् । इति मुहुर्मुहुर्विचिन्त्य स्त्रीरत्नभूतामात्मनः कन्यका सत्यभामां तस्मै समर्पयामास । तदा स्यमन्तकमणिं च तस्मै वराय यौतकत्वेन प्रायच्छत् । भगवानपि तेन सन्तुष्टस्ता यथाविधि पर्यणैषीत् ।

---

**प्रश्नाः**—कथ प्राप्तवान् सत्राजित् स्यमन्तकमणिम् ? को गुणस्तस्य मणे ? प्रसेनात्केनापहृत. स मणि ? पश्चात्कस्य हस्ते पतित. स स्यमन्तक. ? किमर्थं

श्रीकृष्ण. प्रसेनमन्वेष्टु प्रचलित ? कथ स समागतो भल्लूकगुहाम् ? कियन्त काल युद्धमभवत्तयो ? किमर्थं स ऋक्षराज स्वाराध्यदैवत रघुनाथ प्रार्थितवान्? अन्ते कथ सत्राजित् श्रीकृष्ण प्रीणयामास ?

**वर्णनम्**—श्रीकृष्णजाम्बवतोर्युद्ध वर्ण्यताम्।

**स्वभाववर्णनम्**—कीदृश स्वभाव· सत्राजितः कृष्णस्य चेत्युदाहरणै· प्रदर्श्यताम्।

**आलेखनम्**—येन क्रमेण श्रीकृष्णो भल्लूकराजस्य गुहा प्रति प्राप्तस्तत्स्पष्ट-मालिख्यताम्।

---

# षोडशः पाठः।

## हिमालयवर्णनम्।

अस्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥ १॥
यं सर्वशैलाः परिकल्प्य वत्सं मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे।
भास्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च पृथूपदिष्टा दुदुहुर्धरित्रीम्॥ २॥
अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिम न सौभाग्यविलोपि जातम्।
एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः॥ ३॥
यश्चाप्सरोविभ्रममण्डनानां सम्पादयित्रीं शिखरैर्बिभर्ति।
बलाहकच्छेदविभक्तरागामकालसन्ध्यामिव धातुमत्ताम्॥ ४॥
आमेखलं सञ्चरतां घनानां छायामधः सानुगता निषेव्य।
उद्वेजिता वृष्टिभिराश्रयन्ते शृङ्गाणि यस्यातपवन्ति सिद्धाः॥ ५॥

पद तुषारस्रुतिधौतरक्त यस्मिन्नदृष्ट्वापि हतद्विपानाम् ।
विन्दन्ति मार्गं नखरन्ध्रमुक्तैर्मुक्ताफलैः केसरिणां किराताः ॥ ६ ॥
न्यस्ताक्षरा धातुरसेन यत्र भूर्जत्वचः कुञ्जरविन्दुशोणाः ।
व्रजन्ति विद्याधरबालकानामालेखलेखक्रिययोपयोगम् ॥ ७ ॥
यः पूरयन् कीचकरन्ध्रभागान् दरीमुखोत्थेन समीरणेन ।
उद्गास्यतामिच्छति किन्नराणां तानप्रदायित्वमिवोपगन्तुम् ॥ ८ ॥
कपोलकण्डूः करिभिर्विनेतु विघट्टितानां सरलद्रुमाणाम् ।
यत्र स्रुतक्षीरतया प्रसूतः सानूनि गन्धः सुरभीकरोति ॥ ९ ॥
दिवाकराद्रक्षति यो गुहासु लीनं दिवाभीतमिवान्धकारम् ।
क्षुद्रेऽपि नून शरणं प्रपन्ने ममत्वमुच्चैःशिरसामतीव ॥ १० ॥
लाङ्गूलविक्षेपविसर्पिशोभैरितस्ततश्चन्द्रमरीचिगौरैः ।
यस्यार्थयुक्त गिरिराजशब्दं कुर्वन्ति बालव्यजनैश्चमर्यः ॥ ११ ॥
भागीरथीनिर्झरसीकराणां वोढा मुहुः कम्पितदेवदारुः ।
यद्वायुरन्विष्टमृगैः किरातैरासेव्यते भिन्नशिखण्डिबर्हः ॥ १२ ॥
सप्तर्षिहस्तावचितावशेषाण्यधो विवस्वान् परिवर्तमानः ।
पद्मानि यस्याग्रसरोरुहाणि प्रबोधयत्यूर्ध्वमुखैर्मयूखैः ॥ १३ ॥

[ कुमारसम्भवे ]

---

**प्रश्नाः**—तयो पूर्वापरयो सागरयो के नामनी ? कस्य मानदण्डो विद्यते ? किं वर्तते हिमाचलस्य पृष्ठदेशे ? के पशवो वसन्ति तत्र ? का मानवजातयो विहरन्ति तत्र ? किं लभ्यतेऽस्य गिरेरुदरात् ? क उपयोगो भारतीयाना हिमाचलस्य ?

**परीक्षणम्**—द्वितीये श्लोके का नामोपमा कल्पिता हिमाचलस्य । कथ पूर्णोपमा यथार्था च भवति सा । अष्टमे श्लोके किं सामान्यदृश्य वर्णित कविना ।

अपि यथार्थैषा कविकल्पना । अत्र विशेषपदानामौचित्य दर्शयत । एकादशे श्लोके केनोपमितो हिमाचल । केन कारणेन गिरिराजशब्दोऽर्थयुक्तो भवति । अपि विशेषणान्युचितानि । केषु श्लोकेषु स्वभावोक्तयो दृश्यन्ते । तेषा माधुर्य कै· पदैर्वर्धित भवति ।

**समासाः**—अनन्तरत्नप्रभव· । आमेखलम् । तुषारस्रुतिधौतरक्तम् । दरीमुखोत्थ । चन्द्रमरीचिगौरै । मिन्नशिखण्डिबर्ह ।

**अर्थसम्बन्धः**—१ एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जति । क्षुद्रेऽपि नून शरण प्रपन्ने ममत्वमुच्चै शिरसामतीव । —( एतयोराभाणकयोरन्यान्यु-दाहरणानि प्रदर्शयत । )

**काव्यवृत्तम्**—अस्मिन् काव्ये सर्वत्रोपजातिवृत्तम् । उपजगतिवृत्ते केचित् पादा इन्द्रवज्रावृत्तस्था· केचिच्चोपेन्द्रवज्रावृत्तस्था भवन्ति । यथा—

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| त | त | ज | ग ग | ज | त | ज | ग ग । |
| अस्त्युत्त | रस्या दि | शि देव | तात्मा | हिमाल | यो नाम | नगाधि | राज.। |
| त | त | ज | ग ग | ज | त | ज | ग ग । |
| पूर्वाप | रौ तोय | निधी व | गाह्य | स्थितः पृ | थिव्या इ | व मान | दण्ड. ॥ |

**काव्यरसाः**—

६ भयानकरस —दग्धु विश्व दहनकिरणैर्नोदिता द्वादशार्का
वाता वाता दिशि दिशि न वा सप्तधा सप्तभिन्नाः ।
छन्न मेघैर्न गगनतल पुष्करावर्तकाद्यै.
पाप पापा· कथयत कथं शौर्यराशे पितुर्मे ॥ ६ ॥

७ बीभत्सरस·—रक्त नक्तचरौघ पिबति वमति च ग्रस्तकुन्तः शकुन्त·
क्रव्य नव्य गृहीत्वा प्रणदति मुदितो मत्तवेतालबाल ।
क्रीडत्यक्रीडमस्मिन् रुधिरमदवशात्पूतना नूतनाङ्गी
योगिन्यो मासमेदःप्रमुदितमनसः शूरशक्तिं स्तुवन्ति ॥ ७ ॥

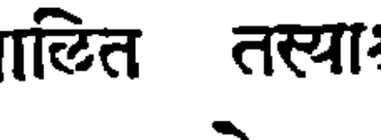
८ रौद्ररस·——पातालस्त. किमु सुधारसमानयामि
निष्पीड्य चन्द्रममृत किमु वा हरामि ।
उद्यन्तमद्य तपन किमु वारयामि
कीनाशपाशमथवा किमु चूर्णयामि ॥ ८ ॥

९ शान्तरस —धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी शान्तिश्चिर गेहिनी
सत्य सूनुरय दया च भगिनी भ्राता मन सयम ।
शय्या भूमितल दिशोऽपि वसन ज्ञानामृत भोजन-
मेते यस्य कुटुम्बिनो वद सखे कस्माद्भय योगिन ॥ ९ ॥

---

# सप्तदशः पाठः ।

## दधीचिकथा ।



युगान्ते चलते मेरुः कल्पान्ते सप्त सागरा ।
साधव. प्रतिपन्नार्था न चलन्ति कदाचन ॥ १ ॥

पुरा किल दधीचिरिति महातपास्तापस आसीत् । निजकलत्रमात्र-निर्वृतोऽपरोऽगास्तिरिव भगवान् दधीचिर्गृहधर्मपरायणस्तयैव भार्यया सहारण्यमधिवसन्विविध तपस्तेपे । निखिल जगदुपप्लावयितु बद्धपरिकरा अपि दानवास्तप.प्रभावपरिपालित तस्याश्रमपदमाक्रमितु न प्रभवुः । अथ गच्छता कालेन शक्रप्रमुखा देवा. सर्वेऽपि तस्याश्रमपद प्राप्य सादर कृतनतयो मुनिना ग्राहितातिथ्याः कुशलमनुयुक्ताश्च प्रोचु. ।

मुनीन्द्र, कुशल नः । फलितप्रायश्चास्माकं मनोरथद्रुमो यदसि सन्दृष्टः । भवता हि परिगृहीताना न किञ्चिदपि दुर्लभ भुवने । किमपि कार्यान्तरमभिधातु मुखरयतीवायमस्मान्स्नेह· । तच्चावधार्यताम् । भगवन्नशेषानपि दानवान्नामशेषान्विधाय भवत्पादमूलमुपायाताः स्म· । साम्प्रत च शत्रुविरहिणां नोऽस्त्राणि यदि पुनः स्वर्ग एवैतानि स्थाप्येर-

स्तदानेकविध यत्नमास्थायोपहरेयुरेतानि पराभवमसहमाना दैत्याः । तदेतानि भवदाश्रम एवार्हाणि स्थापयितुम् । अत एतान्यात्मीयतां नीत्वाऽनुजानीह्यस्मान्नन्दनवनविहाराय । तपःप्रभावाद्दानवदुष्प्रवेशे ह्यस्मिन् प्रदेशे नैतेषामपहारस्य शङ्काया अप्यवसर इति ।

मुनिरपि तत्सादरमङ्गीचकार । गर्भस्तिनी तु तदखिलमाकर्ण्य भर्तारं प्राह । नाथ, किमनेन देवकार्येणास्माकम् । परमार्थैकनिष्ठानामपेत-संसारानुरागाणा हि लोकद्वयविरुद्धमेतदाचरणम् । किञ्च, यदि जानीयु-रत्र निहितान्यायुधानि महाप्रयासा दैत्यास्तदा महीयसा प्रयत्नेनाप्या-हरेयु' । ततश्च निक्षेपविनाशक्रुद्धा अमी एव देवाः शत्रवः सम्पद्धेर-न्नस्माकम् । अत एव परित्यजन्त्यापातरमणीयं दुःखविपाकिन पन्थानमेन सन्तः । तदलमेतेन व्यवसायेनेति ।

पूर्वमेव प्रतिपन्नार्थस्तु दधीचिर्निशम्येद भार्याया वचनं प्रत्यब्रवीत् । प्रेयसि, अवितथं खल्वेतत्सर्वम् । किन्तु न शक्नोमि परावर्तयितु सकृदपि समुद्गता वाचम् । सा तु तदाकर्ण्य देवमेव शरण मन्वाना तूष्णीं बभूव । देवा अपि प्रणष्टभीतयस्तापसाभ्यनुज्ञाताः सानन्दं दिवमगच्छन् । तेषु गतेषु दधीचिरपि कियन्त कालं भार्यया सह सुखमुवास । अथ दैत्या दधीचिं पीडयितु प्रावर्तन्त । देवास्तु व्यतीतेऽपि वर्षाणां सहस्रे नात्मन आयुधविषयिणीं निनीषां प्रदर्शयामासुः । प्रतिदिन पुनरधिका-धिक ववृधे राक्षसत्रासः । ततः पर्याकुलमतिर्दधीचिर्भार्यामाह स्म । प्रेयसि, आयुधान्यत्र संस्थाप्य निर्विशङ्क दिव प्रस्थिता देवा नाद्यापि प्रतिनिवर्तन्ते । प्रतिदिवसं च समेधत उपप्लवो दैत्यानाम् । तदशक्यान्यतः— परमायुधानि संरक्षितुम् । ब्रूहि किमत्र करवाणीति । सा तु सर्वार्थविद्धवानेवात्र प्रमाणमिति प्रत्यब्रूत । ततो बलोत्करेभ्यो दानवेभ्य



आयुधानि परिरक्षितुमीहमानो दधीचिः पुण्यैर्जलैस्तानि प्रक्षाल्य जलमयत्व नीत्वा च प्राश्नात् ।

एवभूते च देवा दधीचिमुपेत्य प्राहुः । मुने, उपस्थिताऽस्माकं महाभीतिस्तत्प्रत्यर्प्यन्तामस्त्राणीति । ततो दधीचिः प्राह स्म । महाभागाः, अत्रावस्थाप्यायुधानि दिव प्रविष्टेषु युष्मासु निकामं प्रववृधे राक्षसत्रासः । ततो भीतश्चाहं भवतः प्रतिपालयंश्चिरायाप्यनागतेषु श्रीमत्सु तान्यायुधानि जलमयतां प्रापय्यापिबम् । साम्प्रतं च तानि मदीये शरीरेऽस्थिभावतामापन्नानि । तदुच्यतां यदत्र साम्प्रतमिति । ततो देवा अभाषन्त । मुनीन्द्र, कृतं परिहासेन । देहि नोऽस्त्राणि । बलवत्किल प्रपीड्यामहे रिपुभिः । कथं वा तानि विना सुखं निवत्स्यामः । कुत्र वा गमिष्यामः । कथं च जीवितं धारयिष्यामः । तद्विधीयतां करुणा समर्प्यन्तां चास्त्राणीति । ततो मुनिर्जगाद । महाभागाः, न किल भवज्जीवितादप्यधिको मे देहः । तद्योगयुक्तस्य तनुं त्यजतो ममास्थिभिर्निर्वाह्यतामस्त्रकार्यमिति । देवेषु च तथेति तद्वचनमङ्गीकृतवत्सु जलमानेतुं च प्रयातायां सहधर्मिण्यां महासत्त्वो दधीच्चिर्बद्धपद्मासन आत्मनो जीवं परमात्मसाच्चक्रे । ततो दधीचिं व्यपेतप्राणमवलोक्य देवास्त्वष्टारं समादिदिशुः । आदाय मुनेरस्थीनि निर्मीयन्तां दिव्यास्त्राणीति । ततो देवा अपि कृतायुधाः स्वर्गं प्रययुः ।

अथ नद्याः प्रतिनिवृत्ता गर्भस्तिनी प्रविश्याश्रमे भर्तारमनवलोकमाना नितरां विषसाद । उद्भ्रान्तेव च हा नाथ क्वासीति विलपन्तीतस्ततो बभ्राम । तत आश्रमवर्तिनं भगवन्त हुताशनमुपेत्य क्व मे जीवितेश्वर इत्यप्राक्षीत् । सोऽपि यथावृत्तं वृत्त निजगाद । तदाकर्णयन्त्येव च मूर्च्छिता धरातले न्यपतत् । ततो लब्धसंज्ञा च

सोरस्ताडमुच्चै. क्रोशन्ती भर्तुर्नखलोमादीन्यादाय च विरच्य च महीयसीं चिता प्रणम्य चानल प्रविदार्य चात्मन क्षिप्त तत्र संस्थितं ननय च पाणावादाय साञ्जलिबन्ध प्रार्थयामास ।

पित्रा हीनो बन्धुभिर्गोत्रजैश्च मात्रा हीनो बालक्रोऽच्छिन्ननाल ।
ओपध्योऽमु भूतसङ्घ. समेता. सर्वे पान्तु प्रेमतो लोकपाला ॥ २ ॥

अयं च चरमो व. प्रणाम इति वदन्त्येव ज्वालामालाजटिल जातवेदस प्राविशत् । अहो सत्यवादिता साधूनाम् । अवितथ खल्वेतद्वचनम् । यथा—

विद्युत्पा वचनाद्वाच सहसा यान्ति नो बहिः ।
यातार्थेन्न पराञ्चन्ति द्विरदाना रदा इव ॥ ३ ॥

[ सस्कृतचन्द्रिकायाम ]

---

प्रश्नाः—कुत्रावस्द्दधीचि ? के प्राप्तास्तस्याश्रमपदम ? किं कार्यमासीत्तेषाम् ? किमर्थं पत्यादीकृतमन्त्ररक्षण गर्भस्तिनी नान्वमन्यत ? दानवेभ्योऽस्त्राणि रक्षितु का युक्तियोजिता दधीचिना ? देवैरस्त्राणि याचितो दधीचिस्तेभ्य किं प्रदर्दौ ? गर्भस्तिन्यै केन कथितो दधीचेर्निधनवृत्तान्त. ? तदा सा किमकरोत् ?

**स्वभाववर्णनम्**—दधीचिमुनेस्तस्य भार्याया गर्भस्तिन्याश्च स्वभाव विस्तरेण वर्णयत ।

**विशदीकरणम्**— ( १ ) फलिनप्रायश्चास्माक मनोरथद्रुमो यदस्ति सन्दृष्ट। ( २ ) तप प्रभावाद् दानवदुष्प्रवेशे ह्यत्र प्रदेशे नैतेषामपहारस्य शङ्काया अप्यवसर । ( ३ ) निक्षेपविनाशक्लृप्ता अमी एव देवा शत्रव समपद्येरन्नस्माकम् । ( ४ ) योग-युक्तस्य मे तनु त्यजतो ममास्थिभिर्निर्वाह्यतामस्त्रकार्यम ।

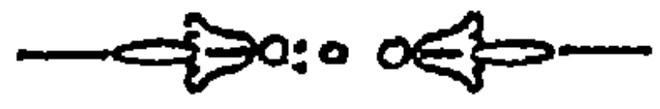
[ योगयुक्तो नाम योगी—तापन । अस्त्रकार्यं निर्वाह्यताम नाम अस्त्राणि निर्मायन्ताम तैश्च स्वकार्यं साध्यताम् । तनु—देह । देवान् प्रति दधीचिमुनि-रित्थ वदति—योगसामर्थ्येन स्वदेहमह त्यक्ष्यामि । तस्मान्मे शवादस्थीनि गृह्णीत तेभ्यश्चास्त्राणि निर्मिमीध्वम् । इति ]

( इत्थमितरेषा वाक्यानामर्थो विशदीक्रियताम् । )

---

# अष्टादशः पाठः ।

## शकुन्तलायाः प्रस्थानमङ्गलम् ।



**प्रियंवदा**—( कर्ण दत्वा । ) अनसूये, त्वरस्व । एते खलु हस्तिना-पुरगामिन ऋषय आकर्ण्यन्ते ।

( प्रविश्य समालम्भनहस्ता )

**अनसूया**—सखि, एहि । गच्छावः ।

( इति परिक्रामत । )

**प्रियंवदा**—( विलोक्य । ) एषा सूर्योदय एव शिखामज्जिता प्रतिष्ठितनीवारहस्ताभि. स्वस्तिवाचनिकाभिस्तापसीभिरभिनन्द्यमाना शकुन्तला तिष्ठति । उपसर्पाव एताम् ।

( इत्युपसर्पत । )

( ततः प्रविशति यथोद्दिष्टव्यापारासनस्था शकुन्तला । )

**तापसीनामन्यतमा**—( शकुन्तला प्रति । ) जाते, भर्तुर्बहुमान-सूचकं महादेवीशब्दं लभस्व ।

**द्वितीया**—वत्से, वीरप्रसविनी भव ।

**तृतीया**—वत्से, भर्तुर्बहुमता भव ।

( इत्याशिषो दत्वा गौतमीवर्जं निष्क्रान्ता । )

**सख्यौ**—( उपसृत्य । ) सखि, सुखमज्जन ते भवतु ।

**शकुन्तला**—स्वागतं मे सख्योः । इतो निषीदतम् ।

**उभे**—( मङ्गलपात्राण्यादाय । उपविश्य । ) हला, सज्जा भव । यावन्मङ्गलसमालम्भन विरचयावः ।

शकुन्तला—इदमपि बहु मन्तव्यम् । दुर्लभमिदानीं मे सखी-मण्डन भविष्यतीति । ( इति वाष्प विसृजति । )

उभे—सखि, उचित न ते मङ्गलकाले रोदितुम् ।

( इत्यश्रूणि प्रमृज्य नाट्येन प्रसाधयत । )

प्रियंवदा—आभरणोचित रूपमाश्रमसुलभैः प्रसाधनैर्विप्रकार्यते ।

( प्रविश्योपायनहस्तौ )

ऋषिकुमारकौ—इदमलङ्करणम् । अलङ्क्रियतामत्रभवती ।

( सर्वा विलोक्य विस्मिता. । )

गौतमी—वत्स नारद, कुत एतत् ?

प्रथमः—तातकाश्यपप्रभावात् ।

गौतमी—किं मानसी सिद्धिः ?

द्वितीयः—न खलु । श्रूयताम् । तत्रभवता वयमाज्ञप्ताः शकुन्तला-हेतोर्वनस्पतिभ्यः कुसुमान्याहरतेति । तत इदानीम्—

क्षौम केनचिदिन्दुपाण्डुतरुणा माङ्गल्यमाविष्कृत
निष्ठ्यूतक्षरणोपभोगसुलभो लाक्षारस. केनचित् ।
अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै-
र्दत्तान्याभरणानि तत्किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभि. ॥ १ ॥

प्रियंवदा—( शकुन्तला विलोक्य । ) हला, अनयाभ्युपपत्त्या सूचिता ते भर्तुर्गृहिऽनुभवितव्या राजलक्ष्मीरिति ।

( शकुन्तला व्रीडा रूपयति । )

प्रथमः—गौतम, एह्येहि । अभिषेकोत्तीर्णाय काश्यपाय वनस्पति-सेवां निवेदयावः ।

**द्वितीयः**—तथा ।

( इति निष्कान्तौ । )

**सख्यौ**—अये, अनुपयुक्तभूषणोऽयं जनः । चित्रकर्मपरिचये-नाङ्गेषु त आभरणविनियोगं कुर्वः ।

**शकुन्तला**—जाने वां नैपुणम् ।

( उभे नाट्येनालकुरुतः )

[ शाकुन्तले ]

---

**प्रश्नाः**—काः शकुन्तलामभिनन्दन्ति, कथ च ? किमन्तर तापस्याशी-र्वचनस्य सख्याशीर्वचनस्य च ? किमर्थ वाष्प व्यसृजच्छकुन्तला ? कीदृशा-न्यलङ्करणान्युपहृतानि कुमाराभ्याम् ? कस्मात् प्राप्तानि तानि ? किं सूचित तेन ?

**विशदीकरणम्**—( १ ) एषा सूर्योदय एव शिखामञ्जिता शकुन्तला । ( २ ) सखि, सुखमज्जन ते भवतु । ( ३ ) आभरणोचित रूपमाश्रमसुलभै. प्रसाधनैर्विप्रकार्यते । ( ४ ) अनयाभ्युपपत्त्या सूचिता ते भर्तुर्गेहेऽनुभवितव्या राजलक्ष्मीरिति ।

**समासाः**—प्रतिष्ठितनीवारहस्ताभि । गौतमीवर्जम् । उपायनहस्तौ । तत्किसल्योद्भेदप्रतिद्वन्द्विभि । ( एतेषां विग्रहान् कृत्वा नामानि कथयत । )

**वृत्तम्**—' क्षौमं केनचित्० ' इत्यस्य श्लोकस्य वृत्त गणविभाजनेन लक्षणेन च सहित कथयत ।

# नवदशः पाठः ।

## वङ्कुरुपेराश्रमवर्णनम् ।

सम्प्राप पृथिवीपालः कालेन कियताप्यथ ।
स कूलोपान्तविचरन्यङ्कु वङ्कुतपोवनम् ॥ १ ॥
इत कुतूहलेनाल तदालोकनजन्मना ।
पतिं मध्यमलोकस्य त जगाद रमाङ्गदः ॥ २ ॥
सीमा सतीति शब्दस्य सकुशाङ्कास्पपल्लवा ।
मैथिलीव श्रिय धत्ते कामप्याश्रमभूरियम् ॥ ३ ॥
इतो वान्ति हविर्धूमलतालास्यप्रदा इमे ।
मरुतः पावनाः पक्वपुरोडाशसुगन्धयः ॥ ४ ॥
इतो हिरण्मयी भूमिस्तरवो हेमवल्कलाः ।
उन्निद्रहेमपद्मानि पयासीव पदे पदे ॥ ५ ॥
काकपक्षाङ्कमूर्धानः पश्यैते गुरुशिक्षया ।
वटवः खण्डयन्त्यत्र समिधश्च पदानि च ॥ ६ ॥
अनया सामगायन्त्या स्वरसंशयवानयम् ।
इतः करोति कलह शुकः सारिकया समम् ॥ ७ ॥
इदमत्राद्भुतं पश्य मदक्लिन्ना गजस्य यत् ।
गण्डलेखा नखाग्रेण शनैः कण्डूयते हरिः ॥ ८ ॥
प्रभामण्डलपर्यस्ततमसः शतशः पथि ।
तवापतन्ति पातालरवयोऽमी महर्षयः ॥ ९ ॥

एषां द्वितयमेताभिः कपिलाभिरलङ्कृतम् ।
उटजप्राङ्गणं गोभिर्जटाभिरभितः शिरः ॥ १० ॥
इतो गात्रपरावृत्तिभग्नास्थिपरुषेतरान् ।
मुनेः शय्याकुशानत्ति बालः कस्तूरिकामृगः ॥ ११ ॥
इतोऽप्ययमृषिः पश्य जपापाटलयानया ।
गव्रानुगम्यते सायं सन्ध्ययेव दिवाकरः ॥ १२ ॥
सहसैवातिथि· ग्रासः कोऽप्ययं भवतादिति ।
एष प्रत्युटज वक्ति ससम्भ्रममय शुकः ॥ १३ ॥
अतः सम्प्रति वीक्षन्ते कौतुकोत्तानितेक्षणाः ।
त्वामिन्दुमिव पर्यासमण्डलं मुनिकन्यकाः ॥ १४ ॥
तस्मिन्नित्युक्तवत्येव तथा सविधवर्त्मनि ।
ततः पृथ्वीशशाङ्केन वङ्कुर्मुनिरदृश्यत ॥ १५ ॥

[ नवसाहसाङ्कचरिते ]

---

**परीक्षणम्**—क प्रधानो रसोऽस्मिन् काव्ये। के श्लोका रम्यतमा दृश्यन्ते। किमर्थम्। अस्मिन् काव्ये उपमास्थलानि विचिनुत। तृतीये, पञ्चमे च श्लोके कान्यक्षराणि बहुकृत्व प्रयुक्तानि। षष्ठश्लोकस्याभिप्रायो विस्तरेणोच्यताम्। किं सूचित कविनाष्टमे सप्तमे च श्लोके। नवमे श्लोके कैरुपामिता महर्षय। चतुर्दशे श्लोके केनोपमित स राजा।

**काव्यवृत्तम्**—काव्यस्यास्य वृत्त सलक्षण सोदाहरण च कथयत।

**रसाः**—विष्णोरागमन निशम्य सहसा कृत्वा फणीन्द्र गुण
कौपीन परिधाय चर्म करिण शम्भौ पुरो धावति।
दृष्ट्वा विष्णुरथ सकम्पहृदय सर्पोऽपतद्भूतले
कृत्तिर्विस्खलिता ह्रियानतमुखो नग्नो हरो राजते ॥ १ ॥

दृष्टिस्तृणीकृतजगन्नयसत्त्वसारा
धीरोद्धता नमयतीव गतिर्धरित्रीम ।
कौमारकेऽपि गिरिवद्गुरुता दधानो
वीरो रस. किमयमेत्युत दर्प एव. ॥ २ ॥
तत. परामर्शविवृद्धमन्योर्भ्रूभङ्गदुष्प्रेक्ष्यमुखस्य तस्य ।
स्फुरन्नुदर्चि. सहसा तृतीयादक्ष्ण. कृशानु. किल निष्पपात ॥ ३ ॥
( एतेषु श्लोकेषु के रसाः स्फुटं दृश्यन्ते । )

---

# विंशः पाठः ।

## राजकुमारः कमलानन्दः । ( प्रथमभागः )

—०—

अस्ति रत्नवत्या नाम नगर्यां वीरवर्मा नाम भूपालः । दुर्निवार-भुजप्रतापनिर्जितारातेस्तस्य ललनाजनमण्डनायमाना विलासवती नाम रमणी बभूव । अनयोश्च दम्पत्योरनपत्यतया दूयमानयोरतिक्रान्तप्राये यौवने दैववशात्तनयो जज्ञे । सम्मदविकसिताननो वीरवर्मा कुमारस्यास्य कमलानन्द इति नाम चकार । पञ्चमासदेशीये च कुमारे दुर्भाग्य-वशाद्राजा च राजमहिषी च युगपदेव केनापि दुर्निवारेणामयेनाक्रान्तौ धन्वन्तरिप्रतिमैर्भिषग्वरैश्चिकित्सितामयावपि कालवशमुपजग्मतुः ।

गच्छता कालेन नियन्तुरभावात्सर्वेऽपि सचिवादयः स्वस्वविषये स्वातन्त्र्यमवललम्बिरे । अस्वामिकमिव चाभूदशेष राष्ट्रम् । सर्वोऽपि स्वस्यैव प्रभुत्वमवस्थापयितु प्रायतत । एव गते कीटकोत्कीर्णनिःसार-वंशवदनायासोच्वसनीयमिव तद्राष्ट्रं समभूत् । अवसरे चास्मिन् प्रबलतमा

रन्ध्रान्वेषिणो रिपवः सपद्यभिपत्य महीयसा सैन्येन रत्नवतीं परिरुरुधु. । अशेष च राष्ट्रमात्मसाच्चक्रुः । आसीच्चैषा मनोरथो रत्नवतीमवस्कन्द्य राजकुमारं च निहत्य निष्कण्टकमेवानुशासनीयमशेष धरातलमिति । किन्तु दैववशात्तदानीमेवाय राजकुमारो मातृनिर्विशेषया स्नेहैकरसया धात्र्या सुनिगूढमपवाहित इति सर्वेऽपि ते रिपवो विफलमनोरथा एवासन् । व्यतिकरे चास्मिन् राजकुलस्य भद्रं कामयमाना अपि काल-वशाद्दुर्बलप्रायतामापन्नाः केऽपि कुलामात्याः परित्यज्य रत्नवतीं सह्य-वनमध्यमधितष्ठुः ।

धात्री तु कुमारमादाय प्रस्थिता । एकाकिनी सा विविधकण्टकलता-कीर्णेषु निविडारण्यप्रदेशेषु सञ्चरन्ती गगनमध्यमारूढे भगवति दिनकरे देवदर्शितमिव किमपि प्रफुल्लकमलमनोहरं रमणीयसलिलं च सरः प्रेक्ष्य प्रमुदिता स्नानादिनिर्वर्तनाय तस्य तीरमुपजगाम । प्रच्छायशीतलस्य च कस्यापि नातिदूरवर्तिनो मधुकरगुञ्जितमनोहरस्य विकसितस्याशोकतरोस्तले स्वीयमुत्तरीयमास्तीर्य तस्मिन् राजकुमारं शाय-यित्वा तस्यैव वाससोऽञ्चलेन तं प्रावृत्य च स्नातु सलिलेऽवततार । अथासौ यावत्तत्र सरस्यवतीर्णा जलमवगाहते तावदेवैनामुपससार मूर्त इव मृत्युः कोऽपि ग्राहः । तेन च बलीयसा गृहीतचरणेय-मारुरोशन्त्यशरणा हा हतास्मीति क्रन्दन्ती च तदात्व एव व्यहीयत प्राणैः । अहो दुर्निवारित्वं भवितव्यतायाः । यद्राजकुमारोऽपि श्रीमान् कमलानन्दः समयेऽस्मिंस्तत्तादृशक्रूरसत्त्वव्याकुले प्रदेश एकाकी चाशरणश्च सम्पन्न. ।

अथ विहायसमध्यादीषदवगलति प्रचण्डकरे केऽपि पुलिन्दा अनु-भूयाखेटविहारं परिश्रान्तास्तृषाकुलाः सरस्तीरमुपतस्थुः । आसीच्चास्य



महीयसः शबरसैन्यस्य नायको विकटकूजितो नाम । एष चाशेषैरपि किरातैरनुदिन सविनयमभ्यर्च्यमानो भूपाल इवातिविशालवैभवो विन्ध्य-वनप्रदेशे निवसति स्म । अतिक्रान्तेऽपि यौवने नासीदपत्यमेतस्य । ततश्चाकुलाकुल एवायं समभूत् ।

अथ समुपस्थिते सरस्तीरं शबरबले महीपतिकुमारः कमलानन्दः प्रबुद्धो रोदितुमारेभे । रुदित चैतदनतिदूरवर्तिनः शबरसेनापतेः श्रवणपथमुपागच्छत् । स च समाकर्ण्य तदेवविधे निर्मानुपसञ्चारे व्याकुलप्राये प्रदेशे कुतो नामेदं शिशुक्रन्दितमिति विचारयन् विस्मय-स्तिमितान्तःकरणः सहानुचरैरशोकमूलमुपससर्प । उपसृतश्च बाल-भानुमिव हृदयङ्गमकान्तिसमुज्ज्वल विलोक्य कमलानन्दं प्रीतिविस्फारिते-क्षणो नून मदीयार्चनप्रसन्नया भगवत्या विन्ध्यवनदेवतयैवायमर्पित इति मन्यमानः कुमारस्य कान्त्यतिशयेन च सौन्दर्येण च विस्मयमानस्तं कराभ्या सस्नेहमादाय सुनिपुण मुहुर्मुहुर्निरीक्ष्य परिचुम्ब्य च कोमल-पल्लवैः शयनं परिकल्प्यानुचरपरिरक्षितं च त तत्रावस्थाप्य महता प्रमोदेन बालमिममादायात्मनः सदन प्रातिष्ठत । जनयति हि निसर्ग-निष्ठुराणामपि मनसि वात्सल्यमनपत्यता । अथायं कुमारमिम भार्यायै समर्प्य दैवप्रदत्तोऽयं भद्रे संरक्ष्यता तनय इत्यादिदेश । दैवदत्त इत्येव च चकार नामैतस्य ।

[ सस्कृतचन्द्रिकायाम् ]

---

प्रश्नाः—केन कारणेन तद्राष्ट्रमस्वामिकमभवत् ? कैः परिरुद्धा रत्नवती नगरी ? कया, कथ च रक्षितः कमलानन्द ? किमभवत् तस्याः सरसि ? केन श्रुत कमलानन्दस्य रुदितम् ? किमकरोत् स तदा ? अनन्तर कुत्र नीत-कमलानन्दः ?

**परीक्षणम्**—१ के प्रसङ्गा कमलानन्दस्य भार्य्य दुर्भाग्य च दर्शयन्ति। २ निधनमुपगते राजि सचिवै कि कर्तव्यम। ३ शवराणा दिनचर्या वर्णयत।

**द्वितीयायाः प्रयोगविशेषाः**—

१ सीतामामनन्ति प्रकृतिं राम च पुरुषम।

२ भारतीया राजान विष्णोरश पितर च जानन्ति।

३ अवेहि तनया ब्रह्मन् अग्निगर्भा शमीमिव।

४ यमुनातट गोपबाला गता —याता —अवतीर्णा वा।

५ नरपतिहितकर्ता द्वेष्यता याति लोके।

६ तृप्तिं—स्मृति—प्रसिद्धिं ग्रामा. जना।

७ जना प्रभुचित्तमनुवर्तन्ते। गिरिशिखरमारोहन्ति बाला। कृक्षः पथिकावभ्यपतन्, अभ्यद्रवन् वा। आहत कन्दुक आकाशमुत्पतति। कर्षाणा वाचमर्थोऽनुधावति।

८ कृष्ण शिलापट्टमधितिष्ठति—अध्यास्ते—अधिशेते। कुलामात्या. सह्यवनमधितष्ठु।

९ हरिर्वैकुण्ठम उप—अधि—अनु—आ—वसति।

१० कृष्णम् अभित —परित —सर्वत —उभयत गोपास्तिष्ठन्ति।

११ मृत्युलोकम उपर्युपरि हरि। मृत्युलोकम अधोऽधो बाली। सीताया दिव्यता प्रति न रामस्य सशय।

१२ धिक् भीरुत्वम—दरिद्रताम। धिक् तान् जात्मान्। [ धिक् मूढ—धिक् इय भीरुता—एतावपि प्रयोगौ प्रचलितौ ]

१३ लब्धा समया— निकषा—अभि— उप— अनु—अति वानरा प्राप्ता।

१४ कृष्णाभक्तम हा। हा रावणपक्षपातिन। [ हा देवि सीते।—एषोऽपि प्रयोगो दृश्यते क्वचित् ]

१५ भीमम अन्तरेण ( विना ) न कोऽपि शक्तो दुर्योधन हन्तुम्। लक्ष्मम् अन्तरेण महानुरागो रामस्य मनसि सपद्युत्पन्न।

१६ पञ्च वर्षाणि नावर्षत् इन्द्र।

१७ क्रोशम् आयता सा नगरी।

१८ दश योजनानि स ग्राम इत।

# एकविंशः पाठः ।

## राजकुमारः कमलानन्दः । ( द्वितीयभागः )

अथ कियताचन कालेनातिक्रान्तशैशवः कमलानन्दः सह पुलिन्द-कुमारै. क्रीडस्तत्तासु तेषां क्रीडासु पाटवमधिजगाम । विकटकूजितस्तु सेनापतिः कुमारमिमं स्वकुलोचितविद्याध्यापनार्थं काश्चिद्धनुर्विद्यानिष्णातान् किरातवीरानाज्ञापयामास । तैश्च कमलानन्दस्याकृत्यैव प्रसन्नान्तरै-रध्यापित· सङ्ग्रामकलायामद्वितीयतामापेदे ।

अथैकदा कुमारः कमलानन्दः सह वयस्यगणैर्गृहीतविविधमृगयोप-करणो विन्ध्याटवीमध्य प्रविश्य व्यापादितानेकक्रूरसत्त्वो मध्याह्नसहस्रकर-किरणजालतापतप्तः परिश्रान्तश्च विश्रमितुकामः कस्यापि प्रच्छायशीतलस्य प्रसन्नमधुरसलिलात्सरसो नातिदूरवर्तिनः क्षीरतरोर्मूलमुपगत्य परि-चारकपरिकल्पितं सुकुमारतरं नवकिसलयशयनमधिशयानः किङ्करोप-नीतानि कियन्तिचिन्मृणालानि फलानि मूलानि चास्वाद्य नलिनीदल-पुटोपनीतं च सलिलमासेव्य कैश्चन कमलपल्लवपाणिभिः पुलिन्दकुमारै-र्वीज्यमानगात्रस्तस्थौ ।

अथ कृष्णसारचर्मणोपकल्पितोत्तरीयो भसितचर्चिताशेषावयवस्त-त्तद्गात्रयोजिताक्षवलयमनोरमः कोऽपि सिद्धतापसस्तदेव तरुतलमुपतस्थौ । कमलानन्दस्तु तमवलोक्य प्रसन्नेन मनसा प्रेर्यमाणः सहानुचरैः सभक्त्युन्मेष प्रणम्यासनं परिग्राहयामास । परिगृहीतासनस्तु तपोधनाः समवलोक्य तथाविध कमलानन्दं विस्मयस्तिमित इव क्षणमासीत् ।

अथ मुहूर्तं निमील्य नयनद्वय निर्वर्तितसमाधिः पुनः प्रतिक्षिप्य श्रीमति कमलानन्दे प्रणयगर्भं दृश विजहास ।

कमलानन्दस्तु तेन तस्य तथाविधेनाचरितेन सञ्जातकुतूहलः पुनः प्रणम्य कृताञ्जलिर्विज्ञापयामास । भगवन्, अनेन भवदीयेन विश्वसनीयतमेन वपुषा मुखरीक्रियमाणो वाञ्छामि किमप्यनुयोक्तुम् । यदि च न कश्चिद्दोषस्तदानुगृह्यतामय जनः प्रतिवचनप्रदानेनेति । अथ कुमार वाढमनुयुज्यतामिति तापसेनाभ्यनुज्ञात. पुनः प्रार्थयामास विनयावनतः कमलानन्दः । भगवन्नवलोकिनमात्र एव मयि किमिति वा विस्मित पूज्यपादेन किञ्च तदुत्तरं चिन्तित किमिति च पुनरपि प्रक्षाल्य मां पवित्रतमेन वीक्षितेन विहसित भगवतेति । वाञ्छाम्येतदवबोद्धुम् । तत्प्रसीद कथनेनास्य जनमिममनुग्रहीतुमिति ।

अथ तापसोत्तमः प्रसन्नगम्भीरया गिरा निजगाद । वत्स, श्रूयता यदि कुतूहलम् । एष ते वेषः पुलिन्दभावं प्रत्याययति । आकृतिः पुनर्बोधयत्यसाधारणमभिजातत्वम् । न किलापुण्यभाजां हीनकुलजन्मना चैवविधा अवयवसन्निवेशाः प्रभवन्ति । कुतश्चैवविधा कान्तिः पुलिन्दानाम् । न हि वसन्तविकसित सहकारतरुमधिष्ठितोऽपि वायसः कोकिलतां प्राप्नोति । इति त्वामवेक्षमाणस्यैव मे विस्मित चेतः । अथ प्रणिधानेन साक्षात्कृत त्वदीयं जात्यादिक दैवविपाकं च । अहो अनित्यता संसारभावानाम् । अहो वलीयस्त्वं भवितव्यस्य । अहो विलसित मोहस्य । यदेवंविधे कमलदलजललवचपलतमेऽपि ससारे जनाः श्रद्दधते च प्रणयं च वितन्वन्तीति चिन्तयत एव मे प्रादुरभूद्भासः । कुमारोत्तम, त्व हि न पुलिन्दजातीयः । न किल प्रस्तराकरेषु रत्नानि नाम प्रभवन्ति । वत्स, क्षत्रियो भवानशेषभूपालमौलिमालालालनीयचरणार-

विन्दस्य राज्ञो वीरवर्मणस्तनयः । इत्यभिधाय कमलानन्दस्य पितुर्मातुश्च व्यापत्तिं शात्रवाणामुन्मेषं धात्र्या तदपवाहनं तस्याश्च जलेऽवमज्जनं पुलिन्दपतिना चास्य ग्रहणमित्यादिकमशेषमप्युदन्त कथयामास ।

कमलानन्दस्तु सुप्तोत्थित इव व्यपेतमोहजालः परं विस्मयमुपारूढश्च विनिन्दन्नात्मनो भागधेयानि कामप्यनिर्वचनीयामवस्थितिमन्वभवत् । प्रपेदे चाशरण इव तापसोत्तमस्य चरणारविन्दं शरणम् । तपोनिधिरपि कृपापरवशस्तमनुगृह्य पुनः पित्र्यपदासादनोपायमुपदिश्य च सह कमलानन्दस्य पुलिन्दभावेनान्तरधात् ।

कुमारः कमलानन्दोऽपि तत्क्षणपरित्यक्तपुलिन्दजनसंसर्गस्तापसोपदिष्टेन विधिना पित्र्य पदमासाद्य विजिताशेषारिमण्डलः सुचिरं धरा पालयामास ।

[ सस्कृतचन्द्रिकायाम् ]

---

**प्रश्नाः**—कः. कथं वाध्यापितः कमलानन्दः ? कुत्रागच्छत् स वयस्यगणैः सह ? कमपश्यत् स तत्र ? केन कारणेन सञ्जातकुतूहल कमलानन्दः ? किं कथित तेन तापसेन तस्मै ? किमकरोत् ततः कमलानन्दः ?

**विशदीकरणम्**—( १ ) कमलानन्द. सद्ग्रामकलायामद्वितीयतामापेदे । ( २ ) तं सभक्त्युन्मेष प्रणम्यासन परिग्राहयामास । ( ३ ) भवदीयेन विश्वसनीयतमेन वपुषा मुखरीक्रियमाणोऽहम् । ( ४ ) न हि वसन्तविकसित सहकारतरुमधिष्ठितोऽपि वायसः कोकिलता प्राप्नोति । ( ५ ) तपोनिधिरपि सह कमलानन्दस्य पुलिन्दभावेनान्तरधात् ।

**तृतीयायाः प्रयोगविशेषाः**—

१ भीमो गदया सुयोधनोरू चूर्णयति । बालको मातरं चक्षुषा निरूपयति कर्णेन च तस्याः शब्द शृणोति ।

२ जात्या क्रूरो वन्यः पशुः । गोत्रेण कौशिकोऽहम् । प्रकृत्या दर्शनीयः कृष्ण ।

३ कियता मूल्येन क्रीतमिद पुस्तकम् ? द्रोणेन धान्य विक्रीणीते ।

४ जना नौक्या सागरं विमानेन चाकाश तरन्ति । नृप पशुना रुद्र यजते ।

५ सेवको भार स्कन्धेन वहति । सिंहो मूषक करेण धारयति । प्रभोराज्ञा मूर्ध्ना आदाय मारुति प्रस्थित. ।

६ कतमेन दिग्भागेन गत· स चौर· । अनेन वर्त्मना गन्तव्य त्वया । जीवितेन शपति दुष्यन्त. शकुन्तलायै ।

७ रूपेण स्वरेण च रामभद्रमनुहरति लव. । स्वभक्त्या राधिका अतिशेते पूर्वान् भागवतान् । त्यागे धनदेन सम —सदृश स नृप ।

८ रामेण सह—सार्धं लक्ष्मणो गच्छति—रावणो युध्यते । पाण्डवै सम-साक द्रौपदी वने वसति ।

९ रामेण वियोग प्राप्तो दशरथस्य । मेघस्य विद्युता वियोगो माभूत् ।

१० मासेन पाठ शिष्येणाधीत । द्वादशवर्षैर्व्याकरण श्रूयते । पञ्चपंदिवसै-र्वयमेव तत्र गन्तार ।

११ विशुद्धत्वेन त्वयि मम भक्तिर्दृढीभवति । कुमारस्य गुरुभक्त्या प्रीत. पिता । कापुरुष. स्वल्पकेन तुष्यति । अर्जुनस्य प्रावीण्येन विस्मिता जना । बालानां प्रागल्भ्येन प्रमादेन च गुरुर्लज्जते ।

१२ स पुरुष. कर्णेन बधिर —अक्ष्णा काण —पादेन खञ्ज: ।

१३ स जटाभि· तापस·, विनयेन शिष्य शोभते ।

१४ अल क्रोधेन स्वजने । अलम् आलस्येन । कृतम अनेन अश्वेन । कृतम् अनया अक्षक्रीडया ।

१५ किं क्रियते तया धेन्वा या दुग्ध न दद्याति । तृणेन कार्य भवतीश्वरा-णाम् । उद्योगिन पुरुषस्य सेवकैर्न प्रयोजनम् । बालत्वेऽपगते कोऽर्थ. पठनेन । को गुणो मूढेन सानुरागेण च भृत्येन ।

---

# द्वाविंशः पाठः ।

## निदाघवर्णनम् ।

प्रचण्डसूर्यः स्पृहणीयचन्द्रमाः सदावगाहक्षमवारिसञ्चयः ।
दिनान्तरम्योऽभ्युपशान्तमानसो निदाघकालः समुपागतः सखे ॥ १ ॥

निशाः शशाङ्कक्षतनीलराजयः क्वचिद्विचित्र जलयन्त्रमन्दिरम् ।
मणिप्रकाराः सरसं च चन्दनं शुचौ सखे यान्ति जनस्य सेव्यताम् ॥ २ ॥

असह्यवातोद्धतरेणुमण्डला प्रचण्डसूर्यातपतापिता मही ।
न शक्यते द्रष्टुमपि प्रवासिभिः श्रमाकुलैर्गेहनिवृत्तमानसैः ॥ ३ ॥

मृगा. प्रचण्डातपतापिता भृशं तृषा महत्या परिशुष्कतालवः ।
वनान्तरे तोयमिति प्रधाविता निरीक्ष्य भिन्नाञ्जनसन्निभं नभः ॥ ४ ॥

तृषा महत्या हतविक्रमोद्यमः श्वसन् मुहुर्भूरिविदारिताननः ।
न हन्त्यदूरेऽपि गजान् मृगाधिपो विलोलजिह्वश्चलिताग्रकेसरः ॥ ५ ॥

विशुष्ककण्ठोद्धतशीकराम्भसो गभस्तिभिर्भानुमतोऽभितापिताः ।
प्रवृद्धतृष्णोपहता जलार्थिनो न दन्तिनः केसरिणोऽपि बिभ्यति ॥ ६ ॥

रवेर्मयूखैरभितापितो भृशं विदह्यमानः पथि तप्तपांसुभिः ।
अवाङ्मुखो जिह्मगतिः श्वसन् मुहुः फणी मयूरस्य तले निषीदति ॥ ७ ॥

हुताग्निकल्पैः सवितुर्मरीचिभिः कलापिन· क्लान्तशरीरचेतसः ।
न भोगिन घ्नन्ति समीपवर्तिनं कलापचक्रेषु निवेशिताननम् ॥ ८ ॥

विवस्वता तीव्रतराशुमालिना सपङ्कतोयात् सरसोऽभितापितः ।
उत्प्लुत्य मेकस्तृषितस्य भोगिनः फणातपत्रस्य तले निपीदति ॥ ९ ॥

रविप्रभोद्भिन्नशिरोमणिप्रभो विलोलजिह्वाद्वयलीढमारुतः ।
विषाग्निसूर्यातपतापित. फणी न हन्ति मण्डूककुल तृषाकुलः ॥ १० ॥

[ ऋतुसंहारे ]

---

**प्रश्नाः**—कीदृग सूर्यो निदाघे? दिनस्य को भागो रम्यो ग्रीष्मकाले? जना किं सेवन्ते तदा? किमनुभवन्ति पथिका·? कुत्र धावन्ति मृगा? किमर्थम्? केन कारणेन सिंहो गजं न हन्ति? कस्मात् कारणाच्च गजा· सिंहान्न विभ्यति? कुत्र निषीदति आतपतापित फणी? केन सह तस्य स्वभाववैरम्? किमर्थं भेक· सरस उल्लवते?

**परीक्षणम्ः**—अस्मिन् काव्ये स्वभावोक्तिः कुत्र दृश्यते। अतिशयोक्तिश्च केषु श्लोकेषु। चरमेषु पञ्चश्लोकेषु को रसः स्फुट ज्ञायते। के श्लोका मधुरतमा भवन्ति। चतुर्थे श्लोके कैः पदैर्मृगजलं वर्णितम्। अपि युक्तं तत् तद् विशेषणपदम्। किमक्षरं बहुधा दृश्यते। कस्तस्य परिणाम। पञ्चमे श्लोके 'मृगाधिपस्य' यानि विशेषणपदानि तेषामौचित्यं दर्शयत। तथैव च सप्तमेऽष्टमे च श्लोके। दशमे श्लोके कथ त्रिविधस्तापो दर्शित· फणिनः।

**शब्दप्रयोगाः**—एतेषु श्लोकेषु प्रयुक्तान् समानार्थान् शब्दान् विचिनुत। सूर्य.—किरण —सर्प —मयूर.—गज —सिंह·—भेक·।

**समासाः**—अवगाहक्षमवारिसञ्चयः। शशाङ्कक्षतनीलराजय·। गेहनिवृत्त-मानसै·। विलोलजिह्व·। प्रवृद्धतृष्णोपहता.। हुताग्निकल्पै। सपङ्कतोयात्। फणातपत्रस्य। ( ऐतेषा विग्रहान् कृत्वा नामानि कथयत। )

**काव्यवृत्तम्**—एतेषां श्लोकाना वृत्तं वशस्थम्। ( जतौ तु वशस्थमुदी-रित जरौ। )

| ज | त | ज | र |
|---|---|---|---|
| प्रचण्ड | सूर्यः स्फु | हणीय | चन्द्रमा· |

**एतेषु श्लोकेषु के रसा दृश्यन्ते—**

१ अयेदं रक्षोभि. कनकहरिणच्छद्मविधिना
तथा वृत्त पापैर्व्यथयति यथा क्षालितमपि।

जनस्थाने शून्ये करुणकरुणै रामचरितै-
रपि भ्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् ॥ १ ॥
२ स्थाणु स्वयं मूलविहीन एव पुत्रो विशाखो रमणी त्वपर्णा ।
परोपनीतै कुसुमैरजस्र फलत्यभीष्ट किमिद विचित्रम् ॥ २ ॥
३ असारे खलु ससारे सार श्वशुरमन्दिरम् ।
हरो हिमालये शेते हरि शेते च सागरे ॥ ३ ॥
४ गङ्गातीरे हिमगिरितले बद्धपद्मासनस्य
ब्रह्मध्यानेऽभ्यसनविधिना योगनिद्रा गतस्य ।
किं तैर्भाव्यं मम सुदिवसैर्यत्र ते निर्विशङ्का·
कण्डूयन्ते जरठहरिणाः शृङ्गमङ्गे मदीये ॥ ४ ॥

---

# त्रयोविंशः पाठः ।

## " उद्धरेदात्मनात्मानम् " ।

—:○*○:—

विदितमेव शीर्षकभूतमेतद्भगवतो वचनं सर्वेषाम् । अत्र किल यत्र क्वापि विपदि निमग्नमात्मानमात्मनैव समुद्धरेन्न तु तत्रापरेषां साहाय्य-मपेक्षेतेति प्रतिपाद्यते । युक्तं चैतत् । तथाहि । विरलाः किल विपदि साहाय्यस्याधातारः । सर्वेऽपि खलु संम्पदि बन्धुता प्रकटीकुर्वन्ति । समुपस्थितायां पुनर्विपदि नैव भवति कोऽपि कस्यापि सहायो नाम । प्रत्युत सुहृदोऽपि विद्वेषिण इव सम्पद्यन्ते । तदेतदुक्त कविना शूद्रकेण । ' सर्वोऽपि बन्धुः समसंस्थितस्य न कोऽपि बन्धुर्विपमस्थितस्य । ' इति । अपरेऽपि प्राहुः । ' वनानि दहतो वह्नेः सखा भवति मारुतः । स एव दीपनाशाय कृशे कस्यास्ति सौहृदम् ' ॥ इति । अतो विपन्नेन स्वयमेवात्मा

समुद्धरणीयो भवति। यदि पुनः सोऽय विपद्यपि साहाय्याप्त्यर्थं परमुखं प्रेक्षेत केवलमात्मान नोद्धर्तुं प्रभवेत् प्रत्युत स्थूणानिखननन्यायेन समधिकमेव विपदि निमज्जयेदात्मानम्। अत एवोक्त भगवता 'उद्धरेदात्मनात्मानम्' इति।

इह खलु जगति प्रत्युपकारापेक्षयैव परोपकारप्रवृत्तिः प्रायेण सर्वेषां सन्दृश्यते। सौरभस्य फलस्यापि वा प्रत्याशया तरवः पोष्यन्ते। पयसः कृते गावः परिपाल्यन्ते। आत्मनः साहाय्यमाचरिष्यन्तीति सुहृत्सु सौहार्दमाविष्क्रियते। चिराय किल परिपालयिष्यतीति भृत्यैरपि प्रभुः संसेव्यते। किमधिकम्। यत्किलात्मनिर्विशेषं वात्माभ्यधिक वा परिपाल्यन्ते पुत्राः पित्रादिभिस्तत्रापि ननु प्रत्युपकारापेक्षैव प्रधानं निदानमित्यत्र नास्ति सन्देहः। पुत्रा ह्यात्मनो वार्द्धके साहाय्यमाचरिष्यन्ति च परिपालयिष्यन्ति च प्रदास्यन्ति च निवापोदकं परस्तादित्येवमभिसन्धायैव तेषु पित्राद्यः समधिकं स्निह्यन्ति। यतः पुनर्यस्य नास्ति पत्युपकारप्रत्याशा नैवासौ तस्मिन् सविशेष स्निह्यतीति सामान्योऽय लौकिकानां नियमः।

अत एव पदे पदे भिक्षार्थमटन्तो भूयासः पुरुषाः प्रायेण सर्वैरप्यनाद्रियमाणाः सन्दृश्यन्ते। एतावता पुनरेतदेव पर्यवस्यति यद्यस्मात्किल नास्ति प्रत्युपकारप्रत्याशा तेन खलु स्वयमेवात्मा समुद्धरणीयो भवतीति। अत एवोक्त भगवता 'उद्धरेदात्मनात्मानम्' इति।

[ सूनृतवादिन्याम् ]

---

प्रश्नाः—अस्य पाठस्य शीर्षकभूत वचन केनोक्त भवति? कस्तस्यार्थ? सम्पदि किमर्थं सर्वे बन्धुतां प्रकटीकुर्वन्ति? विपदि तु किमर्थं बान्धवा अपि

पराङ्मुखीभवन्ति ? विपन्नेन नरेण कथ स्वात्मा समुद्धरणीय ? किमर्थं परोपकार· क्रियते जनै ?

**प्रयोगान्तराणि**—( १ ) विरला किल विपदि साहाय्यस्याधातार. । ( नञ्युक्त· प्रयोग क्रियताम् । ) ( २ ) वनानि दहतो वह्ने सखा भवति मारुत । ( 'यदा–तदा' इति पदद्वयेनाभिप्रायो वक्तव्य· । ) ( ३ ) प्रत्युपकारापेक्ष-यैव परोपकारवृत्ति सर्वेषा सन्दृश्यते । ( द्वाभ्या वाक्याभ्यामस्यार्थ उच्यताम् । ) ( ४ ) यत पुनर्यस्य नास्ति प्रत्युपकारप्रत्याशा नैवासौ तस्मिन् सविशेष स्निह्यति । ( 'यदि–तर्हि' इति पदद्वयेनाभिप्रायो वक्तव्य । )

**चतुर्थ्याः प्रयोगविशेषाः**—

१ गुरवे दक्षिणा प्रदेया । नृपतिर्युद्धाय सन्नह्यते । लक्ष्मणाय सुमित्रा प्रार्थयते वसिष्ठ ।

२ वालाय मोदको रोचते । युधिष्ठिराय सत्य रोचते ।

३ कृपणो धनाय स्पृहयति, लुभ्यति वा । नृपाणा स्पृहा भोगेभ्यो, न तु प्रजाहिताय ।

४ द्वौ वरौ धारयति दशरथ कैकेय्यै । द्रव्यशत धारयति भिक्षुर्धनिकाय ।

५ दुर्योधनो भीमाय क्रुध्यति—कुप्यति—द्रुह्यति—ईर्ष्यति—असूयति वा । ( किन्तु ) भीमम् अभिद्रुह्यति —अभिक्रुध्यति वा दुर्योधन ।

६ भीमो दुर्योधनवध द्रौपद्यै प्रतिशृणोति ।

७ यतसे परोपकाराय धनाय वा । यूपाय दारु । कञ्चुकाय वस्त्रम् । कुण्डलाय सुवर्णम् । उत्खननाय खनित्रम् ।

८ फलेभ्य कुमार उद्यान याति । स वनाय गा मुञ्चति । समिदाहरणाय शिष्या प्रस्थिता वनम् ।

९ प्रजारक्षणाय कल्पते नृप । सच्छील कल्याणाय भवति । वाताय कपिला विद्युत् । ब्राह्मणाय हित—सुख वा ।

१० अग्नये नम –स्वाहा–स्वधा–वषट् । यजमानाय स्वस्ति । दुग्ध क्षुधितस्य तृप्त्यै अलम् । रावणवधाय राम अलम्—प्रभु —शक्तो वा । मल्लो मल्लाय प्रभवति ।

११ देवतां देवतायै वा नमस्कुर्म·—प्रणमाम । स्वागत दुष्यन्ताय कुशलं च ।

१२ रामचन्द्राय मारुति· सीताऽवृत्तान्त कथयति—आख्याति—शसति—आचक्षते—निवेदयति वा ।

१३ पाण्डवाः कौरवश्रेष्ठाय कृष्ण दूत प्रेषयन्ति । दुर्योधनस्तु त तृणाय—तृण वा मन्यते ।

---

# चतुर्विंशः पाठः ।

## भरतस्य प्रतिमागृहप्रवेशः ।



**भरतः**—( किञ्चिद् गत्वावलोक्य ) कस्य नु खलु दैवतस्य स्थानं भविष्यति । नेह किञ्चित् प्रहरण ध्वजो वा वहिश्चिह्नं दृश्यते । भवतु, प्रविश्य ज्ञास्ये । ( प्रविश्यावलोक्य ) अहो क्रियामाधुर्यं पाषाणानाम् । अहो भावगतिराकृतीनाम् । दैवतोद्दिष्टानामपि मानुषविश्वासतासां प्रतिमानाम् । किन्नु खलु चतुर्दैवतोऽय स्तोमः । अथवा यानि तानि भवन्तु । अस्ति तावन्मे मनसि प्रहर्षः ।

कामं दैवतमित्येव युक्त नमयितु शिरः ।
वार्षलस्तु प्रणामः स्याद्मन्त्रार्चितदैवतः ॥ १ ॥

( प्रविश्य )

**देवकुलिकः**—भो नैत्यकावसाने प्राणिधर्ममनुतिष्ठति मयि को नु खल्वयमासा प्रतिमानामल्पान्तराकृतिरिव प्रतिमागृह प्रविष्टः । भवतु, प्रविश्य ज्ञास्ये ।

( प्रविशति । )

**भरतः**—नमोऽस्तु ।

**देवकुलिकः**—न खलु न खलु प्रणामः कार्यः ।

**भरतः**—मा तावद् भोः ।

वक्तव्यं किञ्चिदस्मासु विशिष्टः प्रतिपाल्यते ।
किं कृतः प्रतिषेधोऽय नियमप्रभविष्णुना ॥ २ ॥

**देवकुलिकः**—न खल्वेतैः कारणैः प्रतिषेधयामि भवन्तम् । किन्तु दैवतशङ्कया ब्राह्मणजनस्य प्रणामं परिहरामि । क्षत्रिया ह्यत्रभवन्तः ।

**भरतः**—एवम् । क्षत्रिया ह्यत्रभवन्तः । अथ के नामात्रभवन्तः ।

**देवकुलिकः**—इक्ष्वाकवः ।

**भरतः**—( सहर्षम् ) इक्ष्वाकव इति । एते तेऽयोध्याभर्तारः ।

एते ते दैवतानामसुरपुरवधे गच्छन्त्यभिसरीन्—
एते ते शक्रलोके सपुरजनपदा यान्ति स्वसुकृतैः ।
एते ते प्राप्नुवन्तः स्वभुजबलजिता कृत्स्नां वसुमती-
मेते ते मृत्युना ये चिरमनवसितास्छन्दं मृगयता ॥ ३ ॥

भो यदृच्छया खलु मया महत् फलमासादितम् । अभिधीयतां कस्तावदत्रभवान् ।

**देवकुलिकः**—अयं खलु तावत् सन्निहितसर्वरत्नस्य विश्वजितो यज्ञस्य प्रवर्तयिता प्रज्वलितधर्मप्रदीपो दिलीपः ।

**भरतः**—नमोऽस्तु धर्मपरायणाय । अभिधीयतां कस्तावदत्रभवान् ।

**देवकुलिकः**—अयं खलु तावत् संवेशनोत्थापनयोरनेकब्राह्मण-जनसहस्रप्रयुक्तपुण्याहशब्दरवो रघुः ।



**भरतः**—अहो बलवान्मृत्युरेतामपि रक्षामतिक्रान्तः । नमोऽस्तु ब्राह्मणजनावेदितराज्यफलाय । अभिधीयतां कस्तावदत्रभवान् ।

**देवकुलिकः**—अय खलु तावत् प्रियावियोगनिर्वेदपरित्यक्तराज्य-भारो नित्यावभृथप्रशान्तरजा अजः ।

**भरतः**—नमोऽस्तु श्लाघनीयपश्चात्तापाय । ( दशरथप्रतिमा-मवलोकयन् पर्याकुलो भूत्वा ) भो बहुमानव्याक्षिप्तेन मनसा सुव्यक्तं नावधारितम् । अभिधीयतां कस्तावदत्रभवान् ।

**देवकुलिकः**—अयं दिलीपः ।

**भरतः**—पितृपितामहो महाराजस्य । ततस्ततः ।

**देवकुलिकः**—अत्रभवान् रघुः ।

**भरतः**—पितामहो महाराजस्य । ततस्ततः ।

**देवकुलिकः**—अत्रभवानजः ।

**भरतः**—पिता तातस्य । किमिति किमिति ।

**देवकुलिकः**—अय दिलीपः, अयं रघुः, अयमजः ।

**भरतः**—भवन्त किञ्चित् पृच्छामि । धरमाणानामपि प्रतिमाः स्थाप्यन्ते ?

**देवकुलिकः**—न खलु, अतिक्रान्तानामेव ।

**भरतः**—तेन ह्यापृच्छे भवन्तम्—।

**देवकुलिकः**—तिष्ठ ।

येन प्राणाश्च राज्य च स्त्रीशुल्कार्थे विसर्जिताः ।
इमां दशरथस्य त्वं प्रतिमां किं न पृच्छसि ॥ ४ ॥

**भरतः**—हा तात । ( मूर्च्छितः पतति । पुनः प्रत्यागत्य )

हृदय भव सकाम यत्कृते शङ्कसे त्व
श्रृणु पितृनिधन तद् गच्छ धैर्य च तावत् ।
स्पृशति तु यदि नीचो मामय शुल्कशब्द-
स्त्वथ च भवति सत्यं तत्र देहो विशोष्यः ॥ ५ ॥

आर्य—

**देवकुलिकः**—आर्येति इक्ष्वाकुकुलालापः खल्वयम् । कच्चित् कैकेयीपुत्रो भरतो भवान् ननु ।

**भरतः**—दशरथपुत्रो भरतोऽस्मि, न कैकेय्याः ।

**देवकुलिकः**—तेन ह्यापृच्छे भवन्तम् ।

**भरतः**—तिष्ठ, शेषमभिधीयताम् ।

**देवकुलिकः**—का गतिः । श्रूयताम् । उपरतस्तत्रभवान् दशरथः । सीतालक्ष्मणसहायस्य रामस्य वनगमनप्रयोजन न जाने ।

**भरतः**—कथं कथम् , आर्योऽपि वन गतः ?

( द्विगुणं मोहमुपागत । )

**देवकुलिकः**—कुमार, समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

**भरतः**—( समाश्वस्य )

अयोध्यामटवीभूतां पित्रा भ्रात्रा च वर्जिताम् ।
पिपासार्तोऽनुधावामि क्षीणतोयां नदीमिव ॥ ६ ॥

[ प्रतिमायाम् ]

**प्रश्नाः**—दैवतस्थानस्य किं वहिश्चिह्नं भवति ? कीदृश्यः प्रतिमास्तत्र भरतेन दृष्टा. ? दैवताय किमर्थममन्त्रार्चितप्रणामो न कार्यः ? यदा भरतः प्रतिमागृह प्रविष्टस्तदा किं कुर्वन्नास्ते देवकुलिक· ? किमर्थं देवकुलिकेन भरतस्य देवताप्रणामो निवारितः ? किमर्थं भरतो दशरथस्य प्रतिमां दृष्ट्वा तां न पृच्छति ? केषां प्रतिमास्तत्रासन् ?

**पराक्रमवर्णनम्**—इक्ष्वाकुवंशीयानां नृपाणा पराक्रमा विस्तरेण वर्ण्यन्ताम्। प्रत्येक यानि विशेषणपदानि प्रयुक्तानि तेषामौचित्य प्रदर्शयत ।

**वृत्तम्**—तृतीयश्लोकस्य वृत्तम्–सुवदना ।

| म | र | भ | न | य | भ | लग |
|---|---|---|---|---|---|---|
| एते ते | दैवता | नामसु | रपुर | वधे ग | च्छन्त्यभि | सरीन् |

अन्येषा श्लोकानां वृत्तनामानि कथयत ।

**पञ्चम्याः प्रयोगविशेषाः**—

१ शालागृहात् कुमार आयाति ।

२ सौहृदात् रामो विभीषण लङ्काराज्ये स्थापयति । अतिलोभात् वद्धास्ते कपोता ।

३ पर्वतो वह्निमान्, धूमात् । जीर्णत्वात् रज्जुस्त्रुट्यति ।

४ द्राक्षाया आम्रं मधुरतरम् । विद्यायाः श्रेयसी बुद्धि. । अश्वमेधसहस्रेभ्य. सत्यमेवातिरिच्यते । विद्याभ्यासस्य अपराह्णात् प्रात.कालो विशिष्यते ।

५ प्रासादात् नृप प्रेक्षते । श्वशुरात् जिह्वेति स्नुषा ।

६ पापात् जुगुप्सते–विरमति–निवर्तते पुरुष. । स्वाधिकारात्प्रमत्त पुरुष· । सुखासीनो धर्मात् मुह्यति ।

७ आचार्यात् शिक्षिता–अधीता विद्या । प्राणात् वायुरजायत । हिमाचलात् गङ्गा प्रभवति ।

८ मरणात् बिभेति जनः । घोरनादात् त्रस्त.—उद्विग्नो बालः ।

९ भीमात् दुःशासनं त्रातुं यतते कर्ण । मित्र मा पापात् निवारयति हिताय योजयते च । अध्ययनात् पराजयते मन्द. ।

१० समुद्रात् पुरी योजनम् । रामजन्मन. षट्सु दिवसेषु मारुतिजन्म । ग्रामात् पूर्व·—पश्चिम —दक्षिण सागर. । अद्य ग्राम गत्वाय पञ्चषेभ्यो दिवसेभ्य आगन्ता ।

११ कृष्णात् अन्य —पर:—भिन्न.—इतर·—ऋते न कोऽपि कसहन्ता । गृहात् वहि —ऊर्ध्वम्—परे—अन्तरम । वनस्य दूरात्पर्वतोऽस्ति । गिरेरन्तिकात् नदी ।

१२ शैशवात् प्रभृति—आरभ्य शरीरवलं ग्राह्यव्यम् । वहो· कालात् पर—अनन्तरं दृष्ट मित्रम् । दशरथात्पश्चाद्रामो राज्य शशास ।

१३ रामात्—राम—रामेण वा—विना—पृथक्—नाना न किमपि प्रियं मारुते ।

१४ आ कैलासात् सेतुपर्यन्त स भ्रमति । कथा आमूलात् श्रोतुमिच्छामि । आ परितोषात् भोजन कुरु ।

१५ मातु निलीयते कृष्ण. । कृपीवल तिलेभ्य· प्रतियच्छति मापान् । गुरो. प्रति ( प्रतिनिधिरिति ) सभाया विवदते ।

---

# पञ्चविंशः पाठः ।

## दमयन्ती-विलापः ।



अथ निर्झरशीकरस्पृशा पवमानेन मृदूकृतश्रमा ।
अवलम्ब्य लताः शनैःशनैर्विचरन्तीदमुवाच भीमजा ॥ १ ॥
परिगृह्य पतत्रिणावुभौ त्वमसीति प्रतिपन्नमेव मे ।
अनयोः कथमेकमप्यहो दमयन्त्यै ननु न प्रयच्छसि ॥ २ ॥
पुर एव नरेन्द्र दृश्यसे विनिगूढार्धवपुर्लतान्तरे ।
इह दृग्विषये स्थितोऽपि मे प्रतिवाच न कथ प्रयच्छसि ॥ ३ ॥
अलमेभिरकाण्डकौतुकैस्तरुमूलेऽत्र निषीद नैषध ।
चरणौ पथि खेदनिःसहौ तव संवाहयितु समुत्सहे ॥ ४ ॥

रजसा परिधूसरीकृतं तुहिनेनेव वपुः सुधानिधेः ।
परिमार्ष्टुमनाः शनैः प्रभो वदनं तावकमेष मे करः ॥ ५ ॥
रविरम्बरमध्यमाश्रितः क्रमशस्ते वलितक्रमं वपुः ।
इदमम्बु गृहाण शीतल नलिनीपत्रपुटे मयाहृतम् ॥ ६ ॥
अधिकुञ्जमिद शिलातलं शिशिरं निर्झरवारिशीकरैः ।
इह ते श्रमशान्तये मया शयनीय नवपल्लवैः कृतम् ॥ ७ ॥
परिहासकुतूहलेन मा यतसे त्रासयितुं कियच्चिरम् ।
ननु वञ्चनयानया कथ दयिता सा सभया भविष्यति ॥ ८ ॥
यदि वान्यवधूचित मय नृपते त्वन्महिषीमपि स्पृशेत् ।
अवधारय लोकवीर तद्भविता तेन विलज्जतेऽत्र कः ॥ ९ ॥
इति तत्र गिरः पदे पदे निगदन्ती विपिनं विगाह्य तत् ।
क्वचिदप्यविलोक्य वल्लभं दमयन्ती विललाप विक्लवा ॥ १० ॥
विपिने चरतोः पतत्रिणोरपराधः कतमः कृतो मया ।
यदिमौ नितरां प्रतार्य मा दयित मे तिरयाम्बभूवतुः ॥ ११ ॥
अपि सप्तसमुद्रमुद्रिता वसुधा यस्य भुजेन रक्षिता ।
वनवाससखीमपि प्रिया स कथं रक्षितुमक्षमायते ॥ १२ ॥
कृतवानसि नाथ साम्प्रत हतभाग्यामिह मां यदत्यजः ।
असवस्तु नितान्तनिष्कृपाः प्रतिमुञ्चन्ति न मामकं वपुः ॥ १३ ॥
महतीह विपन्मयेऽम्बुधौ तरिरासीत्त्वदुपासनैव मे ।
विधिनाद्य वियोजिता तया विनिमग्नास्मि वने निराश्रया ॥ १४ ॥
इह मा त्वदधीनजीवितां कथमुत्सृज्य गतोऽसि नैषध ।
करुणापि पणीकृता ध्रुवं नृपलक्ष्मीरिव दीव्यता त्वया ॥ १५ ॥

अपि वीक्षितुमक्षमा परैस्त्वदभिन्नैव पुरा विदर्भजा ।
फणिना त्वगिव त्वयोज्झिता शिशुनाप्यद्य पराभविष्यते ॥ १६ ॥
इह धन्यतमा परं मही क्वचिदास्ते सहितैव या त्वया ।
भवता रहिता दमस्वसा नृपलक्ष्मीश्च गताद्य शोच्यताम् ॥ १७ ॥
वसुधे विदधामि तेऽञ्जलिं न सपत्नीति रुषं कुरुष्व मे ।
कथय प्रभुरङ्घ्रिमुद्रया भवतीं यत्र ततोत्यलङ्कृताम् ॥ १८ ॥
अविपद्यविपाकजृम्भित दमयन्त्या किल दुष्कृतं कृतम् ।
अपि काननवासविक्लवं दयितं सा परिहाय जीवति ॥ १९ ॥
अयि पाणिग्रहणेन मां प्रियां गमयित्वा सुखिनीमु मुख्यताम् ।
कथमाशु तपस्विनीष्वपि प्रथमोदाहरणत्वमानयः ॥ २० ॥
सुकृत दुरितं च भूपते मम लोकोत्तरमेव दृश्यते ।
यदहं दयिता तवाभवं परिमुक्ता च वने यतस्त्वया ॥ २१ ॥
हृदय मम निर्ममे विधिः कुलिशेनेति मया विनिश्चितम् ।
यदिद शतधा न भिद्यते दयित त्वद्विरहाग्नितापितम् ॥ २२ ॥
परलोकजुषोऽपि वल्लभानुगच्छन्ति कुलोद्भवाः स्त्रियः ।
हृदयेश्वरमन्तिके स्थित मदृतेऽन्या कतमा विहास्यति ॥ २३ ॥
मम पाणिपरिग्रहः परं समभूत्ते विपदां निबन्धनम् ।
असते खलु सिंहिकासुतस्तपन दर्शतिथेः समागमे ॥ २४ ॥
अथ सा नयनाम्बुवीचिभिः प्रसृताभिर्विनिगूढसञ्चरा ।
पुनरेव नरेन्द्रनन्दिनी परितस्तद्विचचार काननम् ॥ २५ ॥

[ सहृदयानन्दे ]

**काव्यवृत्तम्**—वियोगिनी वृत्तम्। ( विषमे ससजा गुरु समे सभरालाथ गुरुर्वियोगिनी। )

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| स | स | ज | गु | स | भ | र | ल्गु |
| अथ नि | र्झरशी | करस्ट | शा | पवमा | नेन मृ | दूकृत | श्रमा |

**परीक्षणम्**—को रसोऽस्मिन्काव्ये स्फुटं दृश्यते। के श्लोका रम्यतमा भान्ति। प्रथमेषु नवश्लोकेषु कीदृशी दमयन्त्या मनोवृत्ति· स्फुटं दृश्यते। त्रयोदशे श्लोके किमर्थमासवो निष्कृपा इति कथितम्। पञ्चदशे श्लोके 'पणीकृता' इति पदेन किं पूर्ववृत्त सूचित दमयन्त्या। अष्टादशे श्लोके कामुद्दिश्य वदति दमयन्ती। एकविंशे श्लोके कीदृश सुकृत दुरित चात्मनो वर्णितं दमयन्त्या। चतुर्विंशे श्लोके केनोपमित· 'पाणिपरिग्रह·'।

**वर्णनम्**—( १ ) वने विचरन्त्या दमयन्त्या किं किं दृष्ट तत् तत् कथयत। स्थाने स्थाने च के भावास्तस्या मनसि समुत्पन्ना.। ( २ ) दमयन्त्या एतादृशीं दु स्थितिं दृष्ट्वा कस्यान्यस्य जनस्य तादृशी दु.खावस्था स्मर्यते युष्माभि।

---

# षड्विंशः पाठः।

## उर्वशीकुमारः।

**कञ्चुकी**—जयतु जयतु देवः। देव, च्यवनाश्रमात् कुमारं गृहीत्वा सम्प्राप्ता तापसी देवं द्रष्टुमिच्छति।

**राजा**—उभयमप्यविलम्बितं प्रवेशय।

**कञ्चुकी**—यदाज्ञापयति देवः।

( इति निष्क्रम्य चापहस्तेन कुमारेण तापस्या च सह प्रविष्टः। )

**कञ्चुकी**—इत इतो भगवती ।

( सर्वे परिक्रामन्ति । )

**विदूषकः**—( विलोक्य ) किं नु खलु स एष तत्रभवान् क्षत्रिय-कुमारको यस्य नामाङ्कितो गृध्रलक्ष्यवेध्यर्धनाराचः । तथा बहुतरं भवन्तमनुकरोति ।

**राजा**—स्यादेवम् । अतः खलु—

वाष्पायते निपतिता मम दृष्टिरस्मिन्
वात्सल्यबन्धि हृदय मनसः प्रसादः ।
सञ्जातवेपथुभिरुज्झितधैर्यवृत्ति-
रिच्छामि चैनमदयं परिरब्धुमङ्गैः ॥ १ ॥

**कञ्चुकी**—एवं स्थीयताम् ।

( तापसीकुमारौ स्थितौ । )

**राजा**—अम्ब, अभिवादये ।

**तापसी**—महाभाग, सोमवंशविस्तारयिता भव । ( आत्मगतम् ) अहो अनाख्यातोऽपि विज्ञातोऽस्य राजर्षेरायुष्मतो वत्सः सम्बन्धः । ( प्रकाशम् ) जात, प्रणम ते गुरुम् । ( कुमारस्यापगर्भमञ्जलिं करोति । )

**राजा**—आयुष्मान् भव ।

**कुमारः**—( आत्मगतम् )

यदि हार्दमिदं श्रुत्वा पिता ममाय सुतोऽहमस्येति ।
उत्सङ्गवर्धितानां गुरुषु भवेत् कीदृशः स्नेहः ॥ २ ॥

**राजा**—भगवति, किमागमनप्रयोजनम् ?

**तापसी**—शृणोतु महाराजः । एष दीर्घायुरायुर्जातमात्र एवोर्वश्या किमपि निमित्तमवेद्य मम हस्ते न्यासीकृतः । यत् क्षत्रियकुमारस्य

जातकर्मादि विधान तदस्य भगवता च्यवनेनाशेषमनुष्ठितम् । गृहीत-विद्यो धनुर्वेदेऽभिविनीतः ।

**राजा**—सनाथः खलु संवृत्तः ।

**तापसी**—अथ पुष्पसमिदर्थमृषिकुमारकैः सह गतेनानेनाश्रम-विरुद्धमाचरितम् ।

**राजा**—( सावेगम् ) किमिव ।

**तापसी**—गृहीतामिषः किल गृध्रः पादपशिखरे निलीयमानोऽनेन लक्ष्यीकृतो वाणस्य ।

**विदूषकः**—( राजानमवलोकयति । )

**राजा**—ततस्ततः ।

**तापसी**—तत उपलब्धवृत्तान्तेन भगवता च्यवनेनाहमादिष्टा, निर्यातय हस्तन्यासमिति । तदिच्छामि देवीमुर्वशीं प्रेक्षितुम् ।

**राजा**—तेन ह्यासनमनुगृह्णातु भगवती ।

**तापसी**—( उपनीत आसन उपविशति । )

**राजा**—लातव्य, आह्वयतामुर्वशी ।

**कञ्चुकी**—यथाज्ञापयति देवः ।

( इति निष्क्रान्तः । )

**राजा**—( कुमारमवलोक्य ) एह्येहि । वत्स,

सर्वाङ्गीणः स्पर्शः सुतस्य किल तेन मामुपगतेन ।
आह्लादयस्व तावच्चन्द्रकरश्चन्द्रकान्तमिव ॥ ३ ॥

**तापसी**—जात, आनन्दय पितरम् ।

**कुमारः**—( राजानमुपगम्य पादग्रहण करोति । )

**राजा**—( कुमार परिष्वज्य पादपीठे चोपवेश्य ) वत्स, इतस्तव पितुः प्रियसख ब्राह्मणमशङ्कितो वन्दस्व ।

**विदूषकः**—किमिति शङ्क्यिते । नन्वाश्रमवासपरिचित एव शाखामृगः ।

**कुमारः**—( सस्मितम् ) तात, वन्दे ।

**विदूषकः**—स्वस्ति भवते ।

( तत. प्रविशत्युर्वशी कञ्चुकी च )

**कञ्चुकी**—इत इतो देवी ।

**उर्वशी**—( कुमारमवलोक्य ) को नु खल्वेष सत्राणासनः पादपीठे स्वय महाराजेन संयम्यमानशिखण्डकस्तिष्ठति । ( तापसीं दृष्ट्वा ) अहो सत्यवतीसूचितो मम पुत्रक आयुः । महान् खलु संवृत्तः ।

( परिक्रामति । )

**राजा**—( उर्वशीं दृष्ट्वा )

इय ते जननी प्राप्ता त्वदालोकनतत्परा ।
स्नेहप्रस्रवनिर्भिन्नमुद्वहन्ती स्तनाशुकम् ॥ ४ ॥

**तापसी**—जात, एहि प्रत्युद्गच्छ मातरम् ।

**कुमारः**—( उर्वशीं प्रत्युद्गच्छति । )

**उर्वशी**—अम्ब, पादप्रणाम करोमि ।

**तापसी**—वत्से, भर्तुर्बहुमता भव ।

**उर्वशी**—( कुमारमुन्नतमुख परिष्वज्य ) वत्स, पितरमाराधयिता भव । ( राजानमुपेत्य ) जयतु महाराजः ।

**राजा**—स्वागत पुत्रवत्यै । इत आस्यताम् । ( अर्धासन ददाति । )

( सर्वे यथोचितमुपविशन्ति । )

**तापसी**—वत्से, एष गृहीतविद्य आयुः साम्प्रत कवचार्हः संवृत्तः । तदेतस्य ते भर्तुः समक्ष निर्यातितो हस्तनिक्षेपः । तद्विसर्जयितुमिच्छामि । उपरुध्यते ममाश्रमधर्मः ।

**उर्वशी**—चिरस्यार्यां द्रष्टाधिकतरमवितृप्णास्मि । न शक्नोमि विस्रष्टुम् । अन्याय्यं पुनरुपरोद्धुम् । तद्गच्छत्वार्या पुनर्दर्शनाय ।

**तापसी**—एवं भवतु ।

**कुमारः**—आर्ये, यदि सत्यमेव निवर्तसे तदा मामप्याश्रमं नेतुमर्हसि ।

**राजा**—अयि वत्स, उषितं त्वया पूर्वस्मिन्नाश्रमे । द्वितीयमध्यासितु तव समयः ।

**तापसी**—जात, गुरोर्वचनमनुतिष्ठ ।

**कुमारः**—तेन हि—

यः सुप्तवान् मदङ्के शिखण्डकण्डूयनोपलब्धसुखः ।
तं मे जातकलाप प्रेषय मणिकण्ठक शिखिनम् ॥ ५ ॥

**तापसी**—( विहस्य ) एवं करोमि । स्वस्ति भवतु युष्मभ्यम् ।

( निष्क्रान्ता । )



---

**प्रश्नाः**—केन चिह्नेन तस्य कुमारस्य जातिः प्रकटीकृता ? किमभवद्राज्ञस्तं कुमारं दृष्ट्वा ? कथ राजर्षेः कुमारस्य च पितापुत्रयोः सम्बन्धस्तापस्या विज्ञात ? किमर्थं स कुमारः प्रत्यानीतो राजगृहम् ? 'शाखामृग.' इति पदेन

र्किं सूचयति विदूषक· ? केन कारणेनोर्वशी दृष्टमात्रमेव स्वकुमारं विज्ञातु न शक्ता ? कथ राजगृह आश्रमधर्मं उपरुध्यते ? किमर्थ स कुमार आश्रम प्रति निवर्तितुमिच्छति ?

**परीक्षणम्**—आश्रमधर्मान्तर्गता के नियमा युष्माभिर्ज्ञाता । राजकुमारा अपि अनयाश्रमनीत्या दृढ नियमिता इत्यनेन किं सूचित भवति ।

**स्वभावपरीक्षणम्**—( १ ) यानि यानि स्थानानि आयुषो बाल-स्वभावं दर्शयन्ति तानि प्रदर्शयत । ( २ ) विदूषकस्य तापस्याश्च स्वभाव-वर्णनं कुरुत ।

**वृत्तम्**—अस्या कथाया वर्तमानाना सर्वेषा श्लोकाना वृत्तानि कथयत ।

**पठ्यांशः प्रयोगविशेषाः**—

१ तेषा चतुर्णा कुमाराणा राम. प्रियतमः । दुर्योधनभीमयोर्बलीयान् भीम । द्विजाना ब्राह्मण श्रेष्ठ । पाण्डवाना मध्ये धनुर्धारी ख्यातोऽर्जुन ।

२ पञ्चसहस्रवर्षाणि व्यतीतानि कृष्णजन्मन । भारतवर्षे क्षत्रियक्षयस्य सवत्सरसहस्र व्यतीतम ।

३ सर्वस्य हि प्रिय स्वीयमपत्यम् । क्षत्रियाणां प्रिय. सङ्ग्राम । मूर्खस्य कलह प्रिय. ।

४ किमन्तर सूर्यस्य चन्द्रस्य च, सादृश्य वा ? बुद्धकृष्णयोर्महदन्तरम् ।

५ देवतानाम् अनुग्राह्या भक्ता । न किमपि असाध्य भवति उद्यमस्य । शिष्याणा पूज्या गुरव ।

६ अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छति मूढ· । सत्यपालनस्य हेतो सङ्ग्राम· कृतः पाण्डवै. ।

७ सर्वथा कुशलं—हित—भद्र—कल्याण वा उद्योगशीलस्य । तेजस्विना सदा कीर्ति स्थितिश्च ।

८ तरूणाम् अधः—अधस्तात्—उपरिष्टात् वा । ग्रामस्य दक्षिणत —उत्तरत —पश्चात्—पुरस्तात् वा । सैन्यस्य अग्रे—पुर·—पुरत· वा सेनापति. । ग्रामस्य निकटं—दूर वा वनम् । ग्रामस्य दक्षिणेन—उत्तरेण वा नदी वहति ।

९ घलिष्ठो दुर्बलानां प्रभवति । मुनि इन्द्रियाणाम् ईष्टे । बहूनां भावानां प्रभवति दुर्गा । देवो भक्तस्य दयते । मातु स्मरति पुत्रः ।

१० गुणाना अभिज्ञ —अनभिज्ञो वा पुरुष. । सीतागतस्य वृत्तान्तस्य अभ्यन्तर —अनभ्यन्तरो वा रामः ।

११ दिनस्य द्वि—त्रि —चतु —पञ्चकृत्व. वा भोजन क्रियते । मासस्य द्वि· एकादशी । दिनस्य शतकृत्व. स्मरति भक्तः परमेशम् ।

१२ सुशीला· शिष्या गुरोः अभिमता भवन्ति । पाण्डवाना वासो न विदित· कौरवाणाम् ।

१३ सर्वेषा समक्ष सीतयाऽभिप्रवेश· कृत. । तस्याः कृते रावणेन सार्धं रामोऽयुध्यत ।

१४ कृष्णस्य तुल्य.—सदृश —सम —सङ्काशो वा न कोऽपि नीतिचतुर· । ( तृतीयापि युज्यतेऽत्र । )

१५ असत्य न कदापि मनुजानाम् अनुरूप भवति । द्यूतक्रीडा सच्छीलस्य सदृशी न भवति । पाण्डवाधिक्षेपोऽनुचितो दुर्योधनस्य ।

---

# सप्तविंशः पाठः ।

## उत्तङ्ककृतकुण्डलयाचनम् ।



यत्र स क्षत्रियः पौष्यस्तमुपेत्यासीनमपश्यदुत्तङ्कः । स उत्तङ्कस्तमुपेत्याशीर्भिरभिनन्द्योवाच । अर्थी भवन्तमुपागतोऽस्मीति । स एनमभिवाद्योवाच । भगवन्पौष्यः खल्वह किं करवाणीति । स तमुवाच । गुर्वर्थं कुण्डलयोरर्थेनाभ्यागतोऽस्मि । ये वै ते क्षत्रियया पिनद्धे कुण्डले ते भवान्दातुमर्हतीति । तं प्रत्युवाच पौष्यः । प्रविश्यान्तःपुरं क्षत्रिया याच्यतामिति । स तेनैवमुक्तः प्रविश्यान्तःपुरं क्षत्रियां नापश्यत् । स

पौष्यं पुनरुवाच । न युक्तं भवताहमनृतेनोपचरितुं न हि तेऽन्नःपुरे क्षत्रिया सन्निहिता, नैनां पश्यामि । स एवमुक्तः पौष्यः क्षणमात्रं विमृश्योत्तङ्कं प्रत्युवाच । नियतं भवानुच्छिष्टः । स्मर तावत् । न हि सा क्षत्रियोच्छिष्टेनाशुचिना शक्या द्रष्टुम् । पतिव्रतात्वात्सैषा नाशुचेर्दर्शनमुपैतीति । अथैवमुक्त उत्तङ्कः स्मृत्वोवाच । अस्ति खलु मया तु भक्षितं नोपस्पृष्टमागच्छतेति । त पौष्यः प्रत्युवाच । एष ते व्यतिक्रमो नोत्थितेनोपस्पृष्ट भवति शीघ्रमागच्छतेति ।

अथोत्तङ्कस्तं तथेत्युक्त्वा प्राङ्मुख उपविश्य सुप्रक्षालितपाणिपादवदनो निःशब्दाभिरफेनाभिरनुष्णाभिर्ह्रदताभिरद्भिस्त्रिः पीत्वा द्विः परिमृज्य खान्यद्भिरुपस्पृश्य चान्तःपुरं प्रविवेश । ततस्ता क्षत्रियामपश्यत्सा च दृष्ट्वैवोत्तङ्कं प्रत्युत्थायाभिवाद्योवाच । स्वागतं ते । भगवन्नाज्ञापय किं करवाणीति । स तामुवाचैते कुण्डले गुर्वर्थं मे भिक्षिते दातुमर्हसीति । सा प्रीता तेन तस्य सद्भावेन पात्रमयमनतिक्रमणीयश्चेति मत्वा ते कुण्डले अवमुच्यास्मै प्रायच्छदाह चैनम् । एते कुण्डले तक्षको नागराजः सुमृश प्रार्थयत्यप्रमत्तो नेतुमर्हसीति । स एवमुक्तस्तां क्षत्रियां प्रत्युवाच । भवती सुनिर्वृता भवतु । न मां शक्तस्तक्षको नागराजो धर्षयितुमिति ।

स एवमुक्त्वा तां क्षत्रियामामन्त्र्य पौष्यसकाशमागच्छत् । आह चैनम् । भोः पौष्य प्रीतोऽस्मीति । तं पौष्यः प्रत्युवाच । भगवंश्चिरेण पात्रमासादयते । भवांश्च गुणवानतिथिस्तदिच्छे श्राद्धं कर्तुं क्रियतां क्षण इति । तमुत्तङ्कः प्रत्युवाच । कृतक्षण एवास्मि । शीघ्रमिच्छामि ययोपपन्नमन्नमुपस्कृतं भवतेति । स तथेत्युक्त्वा ययोपपन्नेनान्नेनैनं भोजयामास ।

[ महाभारते ]

---

**प्रश्नाः**—किमर्थमुत्तङ्क पौष्यस्य गृहमागत ? कुत्रास्ता ते कुण्डले ? किमर्थं स ता क्षत्रिया नापश्यत् प्रथमत. ? कदा पुनर्दृष्टा तेन सा क्षत्रिया ? कस्यार्थं तेन कुण्डले याचिते ? किं मनसिकृत्य सा क्षत्रिया तस्मै कुण्डले प्रायच्छत् ? कुण्डले गृहीत्वा गच्छते तस्मै किं प्रबोधन दत्त क्षत्रियया ?

**परीक्षणम्**—( १ ) अस्मिन् पाठे ब्राह्मणाना क्षत्रियाणा च के धर्मा निर्दिष्टा· ? ( २ ) कदा गुरुदक्षिणा दातव्या शिष्यै. किमर्थं च ?

**प्रयोगान्तराणि**—( १ ) न युक्त भवताऽहमनृतेनोपचरितुम् । ( 'भवान्' इति पदं कर्तृत्वेन प्रयोक्तव्यम् । ) ( २ ) अस्ति खलु मया भक्षित नोपस्पृष्ट-मागच्छता । ( द्वाभ्या वाक्याभ्यामभिप्रायो वाच्यः । ) ( ३ ) एते कुण्डले नागराज. सुमृश प्रार्थयत्यप्रमत्तो नेतुमर्हसि । ( अस्यार्थो विशदीक्रियताम् । )

**सप्तम्याः प्रयोगविशेषाः**—

१ दीने दया करोति दयालु । दीनेषु मा भवाकरुण । जडविषयेषु नि स्पृहो भवति मेधावी । कुमारी मालां शिरसि वहति ।

२ गोषु कृष्णा वहुक्षीरा वर्तते । धन्विषु रामः श्रेष्ठ· ।

३ अद्वैत पाठ पठित्वा पुनरपि त्र्यहे ( त्र्यहात् वा ) पठाम एनम् । अत्र स्थित्वा अहमग्न्यस्त्रेण क्रोशे लक्ष्यं विध्येयम् ।

४ चर्मणि द्वीपिन हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम् । केशेषु चमरीं हन्ति सीम्नि पुष्कलको हतः ॥ १ ॥ ( चर्मणि—चर्मण कृते इत्यर्थ· । )

५ गुरौ विनयेन वर्तन्ते वाला. । शठे शाठ्येनैव व्यवहर्तव्यम् । सपत्नीजने शकुन्तला प्रियसखीवृत्तिं करोति ।

६ पितरौ वालकेषु स्निह्यतः । गुरवस्छात्रेषु स्निह्यन्ति । विवेकशीले नृपे प्रजा अनुरक्ता भवन्ति । वौद्धा दण्डनीत्याम् अनादृता—अनादरा वाभवन् । हरिभजने रतिं कुर्यात् । मास्तु जडविषयेऽभिलाष ।

७ उद्यम एव नृणामभ्युदये कारण भवति ।

८ क्षत्रकर्मणि नियुक्ता वहवो जना· शिवनृपेण । साम्राज्यस्य प्रभुत्व युज्यते शिवनृपे । उपपन्नं—युक्तरूपं वा सच्छील शिवनृपे ।

९ राज्यभारं रामचन्द्रे आरोप्य—संस्थाप्य वा दशरथो विश्रान्तिमनुभवितुमैच्छत् । वितरति गुरु. प्राज्ञे विद्या यथैव तथा जडे । सचिवे न्यस्तो राज्यभारो नृपेण ।

१० शठे नृशंसे च न कदापि विश्वसेत् ।

११ क्षत्रकर्मणि कुशल —व्यापृत —आसक्त —तत्परः— व्यग्र —निपुण —शौण्ड.—पटु — प्रवीण —पण्डित —धूर्त —कितवो वा अभिमन्यु ।

१२ निद्रायां ( निद्रया वा ) उत्सुकं—प्रसित मन. ।

१३ कस्मिन्नपि पूजार्हे मुनौ अपराद्धा शकुन्तला । अपराद्धा शकुन्तला कस्यापि पूजार्हस्य मुने वा ।

१४ बाणो मृदुनि मृगशरीरे न पात्यः । शस्त्रमनागसि न प्रहर्तव्यम् । क्षत्रिया ब्राह्मणेषु न प्रवीरा ।

---

# अष्टाविंशः पाठः ।

## चन्द्रोदयवर्णनम् ।

ततः स मध्यङ्गतमंशुमन्त
ज्योत्स्नावितान महदुद्वमन्तम् ।
ददर्श धीमान् दिवि भानुमन्त
गोष्टे वृषं मत्तमिव भ्रमन्तम् ॥ १
लोकस्य पापानि विनाशयन्तं
महोदधिं चापि समेधयन्तम् ।

भूतानि सर्वाणि विराजयन्तं
ददर्श शीतांशुमथाभियान्तम् ॥ २ ॥

या भाति लक्ष्मीर्भुवि मन्दरस्था
तथा प्रदोषेषु च सागरस्था ।
तथैव तोयेषु च पुष्करस्था
राज सा चारुनिशाकरस्था ॥ ३ ॥



हसो यथा राजतपञ्जरस्थः
सिंहो यथा मन्दरकन्दरस्थः ।
वीरो यथा गर्वितकुञ्जरस्थ-
श्चन्द्रोऽपि वभ्राज तथाम्बरस्थः ॥ ४ ॥

स्थितः ककुद्मानिव तीक्ष्णशृङ्गो
महाचलः श्वेत इवोच्चशृङ्गः ।

हस्तीव जाम्बूनदबद्धशृङ्गो
रराज चन्द्रः परिपूर्णशृङ्गः ॥ ५ ॥
विनष्टशीताम्बुतुषारपङ्को
महाग्रहग्राहविनष्टपङ्कः ।
प्रकाशलक्ष्म्याश्रयनिर्मलाङ्को
रराज चन्द्रो भगवाञ्शशाङ्कः ॥ ६ ॥
शिलातल प्राप्य यथा मृगेन्द्रो
महारणं प्राप्य यथा गजेन्द्रः ।
राज्यं समासाद्य यथा नरेन्द्र-
स्तथा प्रकाशो विरराज चन्द्रः ॥ ७ ॥
प्रकाशचन्द्रोदयनष्टदोषः
प्रवृद्धरक्षःपिशिताशदोषः ।
रामाभिरामेरितचित्तदोषः
स्वर्गप्रकाशो भगवान् प्रदोषः ॥ ८ ॥

[ वाल्मीकिरामायणे ]

---

**परीक्षणम्**—केन कदा च दृष्टश्चन्द्रमा । को रस. प्रधानोऽस्मिन् काव्ये । के श्लोका रम्यतमा भान्ति । कस्माच्च कारणात् । केनोपमितश्चन्द्र स्थाने स्थाने । कुत्रकुत्रस्था कान्तिश्चन्द्रे विलसति इति तृतीये श्लोके वर्णितम् । कीदृश विशेषणपद प्रयुक्त भवति स्थाने स्थाने द्वितीये श्लोके । तेषामौचित्य दर्शयत । षष्ठे श्लोके शशाङ्कस्य विशेषणानामभिप्रायो वाच्यताम् । अस्मिन् काव्ये 'यमका' 'अनुप्रासा' इत्यादय. शब्दालङ्कारा बहुविधाः सन्ति । तेषामुदाहरणानि विचिनुत ।

**काव्यवृत्तम्**—अस्मिन् काव्ये उपेन्द्रवज्रा वृत्तम् । लक्षणादिक तु प्रथमपाठे द्रष्टव्यम् ।

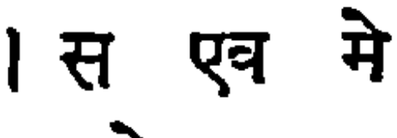
चन्द्राङ्कमुद्दिश्य कविकल्पना—

अङ्के केऽपि शगङ्किरे जलनिधे पङ्के परे मेनिरे
सारङ्ग कतिचिच्च सञ्जगदिरे भूच्छायमैच्छन् परे।
इन्दोर्यद्दलितेन्द्रनीलशकलश्याम दरीदृश्यते
तत्सान्द्रं निशि पीतमन्धतमस कुक्षिस्थमाचक्ष्महे ॥ १ ॥

---

# नवविंशः पाठः ।

## भगवद्भक्तः ।



कदाचिन्नारदो भगवन्त श्रीवासुदेवमुपेत्य पप्रच्छ । भगवन् को वा भवतः परमः प्रेमास्पद च भक्त इति । भगवास्तु तन्नारदस्य वचन-माकर्ण्य नूनमयमात्मानमेव मे परम भक्त मन्वान इदानीमवलेपमावहतीति निश्चिन्वानः प्राह । वत्स, विद्यते स एको मे परमप्रियो भक्तो य एव मामेकान्ततः प्रीणयति । यदि तु कामयसे त द्रष्टु तदा गत्वा भूवलय कृतार्थीकुरुष्व चक्षुरात्मीयम् । तत्र च विदिशायां नाम नगर्यां निवसति कृषीवलोत्तसो भद्रदत्त इति । स एव मे परमो भक्त इत्यवगच्छेति ।

नारदस्तु तच्छ्रुत्वा विस्मिततमो भूमण्डल प्रतस्थे । गत्वा च विदिशा प्रत्यक्षीचकार भगवता निर्दिष्ट पुरुषम् । स किल प्रतिप्रभात शुचौ देशे समासीनः प्रेमभरमन्थरेण चेतसा क्षणमात्र भगवन्तं स्मरति प्रणमति च । ततश्च कृषिकर्मणि व्यापृतो न तु पुनर्भगवन्त स्मरति । तमवलोकमानस्तु नारदः 'अहो किमत्र प्रत्यक्षीकर्त्तव्यं, का चात्र भक्तिर्नाम । अहो परिहासशीलता भगवतो वासुदेवस्य' इति स्वगतमेव

वदन् वैकुण्ठ प्राप । त च प्रत्यागतमालोक्य भगवान् प्राह । वत्स नारद, अपि गतवानसि भूवलयम् । कच्चित्प्रत्यक्षीकृतस्त्वया भद्रदत्तो नाम स मे प्रियतमो भक्त इति । नारदस्तु प्रत्यवदत् । भगवन् दृष्टो मया भवन्निर्दिष्टो भक्तो नैव तु कश्चित्तत्र विशेष उपलब्ध इति ।

तन्निशम्य जलपूरितमेक पात्रमादाय भगवान्नारदमवृत । भद्र गृहीत्वैतत् त्रिः प्रदक्षिणीकुरु पुरोवर्त्येतदायतनम् । तथा पुनरवर्तीयता यथा नैकोऽपि जलबिन्दुरधस्तात्स्खलिष्यतीति । नारदोऽपि तदाकर्ण्य यथाज्ञापयति भगवान्नित्यभिधाय गृहीतपात्रो बिन्दुस्खलनभीत्या तदेकतानमना आयतन परितस्त्रिर्बभ्राम । प्रयागतं च त श्रीभगवानवदत् । वत्स अपि प्रदक्षिणीकृत भवतायतनमिति ।

**नारदः**—अथ किम् ।

**भगवान्**—तद्ब्रूहि प्रदक्षिणीकुर्वता भवता कतिवार स्मृतोऽहमिति ।

**नारदः**—भगवन्, यस्त्य नैकदाप्यहं भवन्तमस्मार्षम् ।

**भगवान्**—( विहस्य ) वत्स, यदि क्षुद्रतमेऽपि कर्मणि व्याप्तेन भवताह न स्मर्य्ये तदा कथ वा नानाविधैः ससारक्लेशैः सन्त्रस्यद्भिर्दिवानिश तेषु तेषु कर्मस्वासक्तैः स्मरणीयोऽहम् । तद्भवीतु तावद्भवानेव सत्यंवं यः पुरुष एकाग्रेण चेतसा नियतकाल मा स्मरति स किं मया भक्तोत्तमेषु गणनीय आहोस्विन्नेति ।

तदाकर्ण्य नारदः सलज्जमधोमुखोऽतिष्ठत् ।



---

प्रश्नाः—नारदस्य वचन श्रुत्वा किमजानाद् भगवान् विष्णु ? कुत्रासीत् स परमो भक्त ? कीदृशी तस्य भक्ति. ? त भक्त दृष्ट्वा किमवदन्नारद स्वगतम् ? तत

किं कर्तुमादिशद् भगवान्नारदम्? आयतन प्रदक्षिणीकुर्वता नारदेन किमर्थं भगवत्स्मरण न कृतम्? कथ च भगवता नारदस्यावलेपपरिहार कृत ?

**शब्दप्रयोगाः**—आस्पदम् । मन्वान. । एकान्तत । प्रत्यक्षीकृतम् । उपलब्धम् । कतिवारम । व्यापृतम् । आहोस्वित् । कचिन् । ( एते शब्दा वाक्येषु प्रयोक्तव्याः । )

**समासाः**—प्रेमभरमन्थरेण । कृपीवलोत्तम । जलपूरितम् । गृहीतपात्र. । एकतानमना । सलज्जम । ( एतेषा विग्रहान् कृत्वा नामानि कथयत । )

**कथान्तरम्**—श्रीकृष्णेन कदाचिदर्जुनस्य गर्वपरिहार कृत । सा कथा संक्षेपेण लिख्यताम् ।

---

# त्रिंशः पाठः ।

## शकुन्तला-पुत्रः ।

**राजाः**—( निमित्तं सूचयित्वा )

मनोरथाय नाशसे किं वाहो स्पन्दसे वृथा ।
पूर्वावधीरितं श्रेयो दु.ख हि परिवर्तते ॥ १ ॥

( नेपथ्ये )

मा खलु चापल कुरु । कथ गत एवात्मनः प्रकृतिम् ।

**राजा**—( कर्ण दत्वा ) अभूमिरियमविनयस्य । को नु खल्वेष निषिध्यते । ( शब्दानुसारेणावलोक्य, सविस्मयम् ) अये, को नु खल्वय-मवुध्यमानस्तपस्विनीभ्यामत्रालसत्वो वालः ।

अर्धपीतस्तन मातुरामर्दक्लिष्टकेसरम् ।
प्रक्रीडितु सिंहशिशु वलात्कारेण कर्षति ॥ २ ॥

[ तत प्रविशति यथानिर्दिष्टकर्मा तपस्विनीभ्या वाल । ]



**बालः**—जृम्भस्व सिंह, दन्तांस्ते गणयिष्ये ।

**प्रथमा**—अविनीत, किं नोऽपत्यनिर्विशेषाणि सत्त्वानि विप्रकरोषि । हन्त, वर्धते ते संरम्भः । स्थाने खलु ऋषिजनेन सर्वदमन इति कृतनामधेयोऽसि ।

**राजा**—किं नु बालेऽस्मिन्नौरस इव पुत्रे स्निह्यति मे मनः । नूनमनपत्यता मां वत्सलयति ।

**द्वितीया**—एषा खलु केसरिणी त्वा लङ्घयिष्यति यदि तस्याः पुत्रकं न मुञ्चसि ।

**बालः**—अहो बलीय· खलु भीतोऽस्मि । ( इत्यधरं दर्शयति । )

**राजा**—

महतस्तेजसो बीज बालोऽय प्रतिभाति मे ।
स्फुलिङ्गावस्थया वह्निरेधापेक्ष इव स्थित· ॥ २ ॥

**प्रथमा**—वत्स, मुञ्चैन बालमृगेन्द्रम् । अपरं क्रीडनक ते दास्यामि ।

**बालः**—कुत्र । देहि तत् । ( इति हस्त प्रसारयति । )

**राजा**—कथ चक्रवर्तिलक्षणमप्यनेन धार्यते ।

**द्वितीया**—सुव्रते, न शक्य एष वाङ्मात्रेण विरमयितुम् । गच्छ त्वम् । मदीयोटजे वर्णचित्रितो मृत्तिकामयूरस्तिष्ठति तमस्योपहर ।

**प्रथमा**—तथा । ( इति निष्क्रान्ता । )

**बालः**—अनेनैव तावत् क्रीडिष्यामि । ( इति हसति । )

**राजा**—स्पृहयामि खलु दुर्ललितायास्मै ।

आलक्ष्यदन्तमुकुलाननिमित्तहासै-
रव्यक्तवर्णरमणीयवचःप्रवृत्तीन् ।

अङ्काश्रयप्रणयिनस्तनयान् वहन्तो
धन्यास्तदङ्गरजसा मलिनीभवन्ति ॥ ४ ॥

**तापसी**—भवतु । मामय न गणयति । ( पार्श्वमवलोक्य ) कोऽत्र ऋषिकुमाराणाम् । ( राजानमवलोक्य ) भद्र. एहि तावत् । मोचयानेन दुर्मोकहस्तग्रहणेन डिम्भलीलया वध्यमानं बालमृगेन्द्रम् ।

**राजा**—( उपगम्य सस्मितम् ) अयि भो महर्षिपुत्र, किमिदमाश्रमविरुद्ध प्रक्रान्तं त्वया ।

[ प्रविश्य मयूरहस्ता तापसी ]

**तापसी**—सर्वदमन, शकुन्तलावण्य पश्य ।

**बालः**—( सदृष्टिक्षेपम् ) कुत्र वा ममाम्बा ।

**उभे**—नामसादृश्येन वञ्चितो मातृवत्सलः ।

**द्वितीया**—वत्स, अस्य मृत्तिकामयूरस्य रम्यत्व पश्येति भणितोऽसि ।

**राजा**—( आत्मगतम् ) किं वा शकुन्तलेत्यस्य मातुराख्या ।

**बालः**—मात , रोचते म एष मयूर· ।

**प्रथमा**—( विलोक्य सोद्वेगम् ) अहो रक्षाकरण्डकमस्य मणिबन्धे न दृश्यते ।

**राजा**—अलमलमावेगेन । नन्विदमस्य सिंहशावविमर्दात् परिभ्रष्टम् । ( इत्यादातुमिच्छति । )

**उभे**—मा खल्विदमवलम्ब्य । कथं गृहीतमनेन । ( इति विस्मय-विभ्रान्ते परस्परमवलोकयत. । )

**राजा**—किमर्थं प्रतिषिद्धाः स्मः ।

प्रथमा—शृणोतु महाराज. । एषापराजिता नामौषधिरस्य जात-कर्मसमये भगवता मारीचेन दत्ता । एतां किल मातापितरावात्मान च वर्जयित्वापरो भूमिपतितां न गृह्णाति ।

राजा—अथ यदि गृह्णाति ।

प्रथमा—ततस्त सर्पो भूत्वा दशति ।

राजा—भवतीभ्यां कदाचिदस्या प्रत्यक्षीकृता विक्रिया ।

उभे—अनेकशः ।

[ राजा कुमार परिष्वजते । ]

बालः—मुञ्च माम् । यावन्मातु. सकाश गच्छामि ।

राजा—पुत्रक, मया सहैव मातरमभिनन्दिष्यसि ।

बालः—मम खलु तातो दुष्यन्तो न त्वम् ।

राजा—( सस्मितम् ) एष विवाद एव प्रत्याययति ।

[ शाकुन्तले ]

---

प्रश्नाः—कोऽसौ मनोरथो दुष्यन्तस्य ? कस्मात्कारणादभूमिरियमविनयस्येति दुष्यन्तेनोक्तम् ? कीदृशं सिंहशिशुमाकर्षति स बाल ? किमर्थं च । त बालक दृष्ट्वा को भाव. समुत्पन्नो दुष्यन्तस्य मनसि ? स कुमारश्चक्रवर्तिलक्षणोपेत इति नृपेण कथ ज्ञातम् ? कथं स कुमारः स्वमातर स्मरति ? कीदृशी सा औषधिः ?

परीक्षणम्—( १ ) सर्वदमनस्य बालस्वभावो यत्र यत्र स्फुट दृश्यते तानि स्थलानि निर्दिशत । ( २ ) केन क्रमेण दुष्यन्त सर्वदमन स्वपुत्रमिति निश्चयेनाभिज्ञातवान् । ( ३ ) चतुर्थे श्लोके को रसो विद्यते । बालकस्य काश्चेष्टाः पितरौ प्रीणयन्ति ।

शब्दप्रयोगाः—आगस् । अभूमिः । स्निह् । क्रीडनकम् । स्पृह् । गण् । रुच् । सोद्वेगम् । प्रत्याययति ।

---

# एकत्रिंशः पाठः ।

## यक्षमन्दिरम् ।



तत्रागारं धनपतिगृहादुत्तरेणास्मदीय
दूरालक्ष्यं सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन ।
यस्योपान्ते कृतकलनयः कान्तया वर्धितो मे
हस्तप्राप्यस्तवकनमितो बालमन्दारवृक्षः ॥ १ ॥

वापी चास्मिन् मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा
हैमैश्छन्ना विकचकमलैः स्निग्धवैदूर्यनालैः ।
यस्यास्तोये कृतवसतयो मानस सन्निकृष्टं
न ध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य हंसाः ॥ २ ॥

तस्यास्तीरे रचितशिखरः पेशलैरिन्द्रनीलै·
क्रीडाशैलः कनककदलीवेष्टनप्रेक्षणीयः ।
मद्गेहिन्या प्रिय इति सखे चेतसा कातरेण
प्रेक्ष्योपान्तस्फुरिततडित त्वा तमेव स्मरामि ॥ ३ ॥

रक्ताशोकश्चलकिसलयः केसरश्चात्र कान्त.
प्रत्यासन्नौ कुरवकवृतेर्माधवीमण्डपस्य ।
एकः सख्यास्तव सह मया वामपादाभिलाषी
काङ्क्षत्यन्यो वदनमदिरां दोहदच्छद्मनास्याः ॥ ४ ॥

तन्मध्ये च स्फटिकफलका काञ्चनी वासयष्टि-
र्मूले बद्धा मणिभिरनतिप्रौढवंशप्रकाशैः ।

ताले शिञ्जद्वलयसुभगैर्नर्तितः कान्तया मे
यामध्यास्ते दिवसविगमे नीलकण्ठः सुहृद्वः ॥ ५ ॥

एभिः साधो हृदयनिहितैर्लक्षणैर्लक्षयेथा
द्वारोपान्ते लिखितवपुषौ शङ्खपद्मौ च दृष्ट्वा ।
क्षामच्छाय भवनमधुना मद्वियोगेन नूनं
सूर्यापाये न खलु कमल पुष्यति स्वामभिख्याम् ॥ ६ ॥

गत्वा सद्यः कलभतनुता शीघ्रसम्पातहेतोः
क्रीडाशैले प्रथमकथिते रम्यसानौ निषण्णः ।
अर्हस्यन्तर्भवनपतितां कर्तुमल्पाल्पभासं
खद्योतालीविलसितनिभा विद्युदुन्मेषदृष्टिम् ॥ ७ ॥

[ मेघदूते ]

---

**प्रश्नाः**—दूरात् कैश्चिह्नैर्गृह लक्ष्यते ? अनन्तर किं पश्येन्मेघ. ? पश्चात् समीपमागत्य किमागच्छेत् तस्य दृष्टिपथम् ? कुत्र उपविशति स मयूर ? द्वारोपान्ते किमालिखित भवति ? केन कारणेन क्षामच्छाय तद्भवनम ?

**परीक्षणम्**—को रस प्रधानोऽस्मिन् काव्ये । यो मेघार्थंतत् सर्व कथयति तस्य कीदृशो मनोभाव स्फुट दृश्यते । के श्लोका मधुरतमा अर्थगौरवाद् भाषासौन्दर्याद् वा । द्वितीये श्लोके 'हसा मानस न ध्यास्यन्ति' इति वचनेन किं सूचितम । कानि विशेषणपदानि अर्थपोषण साधयन्ति । षष्ठे श्लोके चरमा पङ्क्ति किं सूचयति। तया यत् किमपि उत्प्रेक्षित तद् विशदीकुरुत । सप्तमे श्लोके किं पद गुर्वर्थं विद्यते। तेन किमुत्प्रेक्षित भवति। तस्य विशेषणपदानामौचित्य प्रदर्शयत ।

**काव्यवृत्तम्**—अस्य 'मन्दाक्रान्ता'—वृत्तस्य गणान् कथयत । अपि काव्यरसस्य सदृशमेतद्वृत्तम् ? ( मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम् । )

अर्थसम्बन्धः—आभाणकस्योदाहरण तेनैवाङ्केन प्रदर्शयन ।

( १ ) सर्यापाये न खलु कमल पुष्यति स्वामसिन्ध्याम ।

( २ ) अधिगन्तुमनश्वर यशो म्रियते यो मनुज स जीवति ।

( ३ ) प्रासादशिखरस्थोऽपि काको न गरुडायते ।

( ४ ) कियान्सिंदि सत्त्वे भवति महता नोपस्करण ।

( ५ ) न निश्चितार्थाद् विरमन्ति धीरा ।

( ६ ) महाजनस्य सम्पर्क कस्य नोन्नतिकारक ।

( ) सचिवपदे स्थापितो दुर्मति कलुशो राज्यस्य महतीं हानिमकरोत् ।

( ) बहुधा पीडितोऽपि प्रह्लादो हरिभक्तिं न तत्याज ।

( ) नारदस्य समागमेन साधुना प्रायो वाल्मीकि ।

( ) रामवनवासेन अयोध्या उदासीनाऽभवत् ।

( ) स्वामिकार्यार्थं सिंहदुर्गे धागतीर्थे पतितो वीरसेनानाजिर्जयति ।

( ) वानरसहायोऽपि रामो रावणमजयत ।

---

# द्वात्रिंशः पाठः ।

## चारुदत्तकृतमार्यकस्य रक्षणम् ।

( तत प्रविशति चाण्डालो विदूषकश्च । )

विदूषकः—भो', पश्य पश्य पुष्पकरण्डकजीर्णोद्यानस्य सश्रीकताम् ।

चारुदत्तः—वयस्य. एवमेतत् । तथा हि ।

वणिज इव भान्ति नव. पण्यानीव स्थितानि कुसुमानि ।

शुल्कमिव साधयन्तो मधुकरपुत्रा: प्रविचरन्ति ॥ १ ॥

विदूषकः—भोः, इदमलंस्काररमणीय शिलातलमुपविशतु भवान् ।

**चारुदत्तः**—( उपविश्य ) वयस्य, चिरयति वर्धमानकः ।

**विदूषकः**—भणितो मया वर्धमानको वसन्तसेनां गृहीत्वा लघु लघ्वागच्छेति ।

**चारुदत्तः**—तत्किं चिरयति ।

किं यात्यस्य पुरः शनैः प्रवहणं तस्यान्तरं मार्गते
भग्नेऽक्षे परिवर्तनं प्रकुरुते छिन्नोऽथ वा प्रग्रहः ।
वर्त्मन्युज्झितदारुवारितगतिर्मार्गान्तरं याचते
स्वैरं प्रेरितगोयुगः किमथवा स्वच्छन्दमागच्छति ॥ २ ॥

( प्रविश्य गुप्तार्यकप्रवहणस्थः । )

**चेटः**—यातं गावौ यातम् ।

**आर्यकः**—( स्वगतम् )

नरपतिपुरुषाणा दर्शनाद्भीतभीतः
सनिगडचरणत्वात्सावशेषापसारः ।
अविदितमधिरूढो यामि साधोस्तु याने
परभृत इव नीडे रक्षितो वायसीभिः ॥ ३ ॥

अहो नगरात्सुदूरमपक्रान्तोऽस्मि । तत्किमस्मात्प्रवहणादवतीर्य वृक्षवाटिकागहनं प्रविशामि । उताहो प्रवहणस्वामिनं पश्यामि । अथवा कृतं वृक्षवाटिकागहनेन । अभ्युपपन्नवत्सलः खलु तत्रभवानार्यचारुदत्तः श्रूयते । तत्प्रत्यक्षीकृत्य गच्छामि ।

स तावदस्माद्व्यसनार्णवोत्थितं
निरीक्ष्य साधुः समुपैति निर्वृतिम् ।
शरीरमेतद्गतमीदृशीं दशां
धृतं मया तस्य महात्मनो गुणैः ॥ ४ ॥

**चेटः**—इद तदुद्यानम्। यावदुपसर्पामि। ( उपसृत्य। ) आर्य मैत्रेय।

**विदूषकः**—भो', प्रियं ते निवेदयामि। वर्धमानको मन्त्रयति। आगतया वसन्तसेनया भवितव्यम्।

**चारुदत्तः**—प्रिय न प्रियम्।

**विदूषकः**—दास्याःपुत्र, किं चिरायितोऽसि।

**चेटः**—आर्य मैत्रेय, मा कुप्य। यानास्तरण विस्मृतमिति कृत्वा गनागत कुर्वश्चिरायितोऽस्मि।

**चारुदत्तः**—वर्धमानक, परिवर्तय प्रवहणम्। सखे मैत्रेय, अव-तारय वसन्तसेनाम्।

**विदूषकः**—किं निगडेन वद्धावस्या पादौ येन स्वय नावतरति। ( उत्थाय प्रवहणमुद्घाट्य ) भो', न वसन्तसेना। वसन्तसेन खल्वेष।

**चारुदत्तः**—वयस्य, अल परिहासेन। न कालमपेक्षते स्नेहः। अथवा स्वयमेवावतारयामि। ( इत्युत्तिष्ठति। )

**आर्यकः**—( दृष्ट्वा ) अये, अयमेव प्रवहणस्वामी। न केवल श्रुतिरमणीयो दृष्टिरमणीयोऽपि। हन्त रक्षिनोऽस्मि।

**चारुदत्तः**—( प्रवहणमधिरुह्य दृष्ट्वा च ) अये, तन्कोऽयम्।

करिकरसमबाहु. सिंहपीनोन्ननास'
पृथुतरसमवक्षास्ताम्रलोलायनाक्ष'।
कथमिदमसमान प्राप्त एवविधो यो
वहति निगडमेक पादलग्न महात्मा ॥ ५ ॥

तत. को भवान्।

**आर्यक.**—शरणागतो गोपालप्रकृतिरार्यकोऽस्मि।

**चारुदत्तः**—किं घोषादानीय योऽसौ राज्ञा पालकेन बद्धः ।

**आर्यकः**—अथ किम् ।

**चारुदत्तः**—

विधिनैवोपनीतस्त्वं चक्षुर्विषयमागतः ।
अपि प्राणानह जह्या न तु त्वां शरणागतम् ॥ ६ ॥

( आर्यको हर्षं नाटयति । )

**चारुदत्तः**—वर्धमानक, चरणान्निगडमपनय ।

**चेटः**—यदार्य आज्ञापयति । ( तथा कृत्वा ) आर्य, अपनीतानि निगडानि ।

**आर्यकः**—स्नेहमयान्यन्यानि दृढतराणि दत्तानि ।

**विदूषकः**—सङ्गच्छस्व निगडानि । एषोऽपि मुक्तः । साम्प्रतं वयं व्रजिष्यामः ।

**चारुदत्तः**—धिक्शान्तम् ।

**आर्यकः**—सखे चारुदत्त, अहमपि प्रणयेनेदं प्रवहणमारूढः । तत्क्षन्तव्यम् ।

**चारुदत्तः**—अलङ्कृतोऽस्मि स्वयंग्राहप्रणयेन भवता ।

**आर्यकः**—अभ्यनुज्ञातो भवता गन्तुमिच्छामि ।

**चारुदत्तः**—गम्यताम् ।

**आर्यकः**—भवतु, अवतरामि ।

**चारुदत्तः**—सखे, नावतरितव्यम् । प्रत्यग्रापनीतसंयमनस्य भवतो लघुसञ्चारा गतिः । सुलभपुरुषसञ्चारेऽस्मिन् प्रदेशे प्रवहणं विस्त्रासमुत्पादयति । तत्प्रवहणेनैव गम्यताम् ।

**आर्यकः**—यथाह भवान् ।

चारुदत्तः—

क्षेमेण व्रज बान्धवान्

आर्यकः—

ननु मया लब्धो भवान् बान्धवः

चारुदत्तः—

स्मर्तव्योऽस्मि कथान्तरेषु भवता

आर्यकः—

स्वान्मापि विस्मर्यते ।

चारुदत्तः—

त्वा रक्षन्तु पथि प्रयान्तममरा·

आर्यकः—

सरक्षितोऽह त्वया

चारुदत्तः—

स्वैर्भाग्यैः परिरक्षितोऽसि

आर्यकः—

ननु हे तत्रापि हेतुर्भवान् ॥ ७ ॥

चारुदत्तः—यन्नोद्यने पालके महती रक्षा वर्तते, तच्छीघ्रमप-क्रामतु भवान् ।

आर्यकः—एव पुनर्दर्शनाय । ( इति निष्क्रान्त । )

चारुदत्तः—

कृत्वैव मनुजपतेर्महद् व्यलीक

स्यातु हि क्षणमपि न प्रशस्तमस्मिन् ।

मैत्रेय क्षिप निगडं पुराणकूपे
पश्येयु· क्षितिपतयो हि चारदृष्ट्या ॥ ८ ॥

तदेहि । गच्छावः । ( इति निष्क्रान्त । )

[ मृच्छकटिके ]

---

**प्रश्नाः**—कुत्र विचरतो विदूषकचारुदत्तौ ? कस्यागमनमपेक्षित ताभ्याम् ? कस्यामवस्थाया वर्तत आर्यक ? केन हेतुना चारुदत द्रष्टुमागत स आर्यक । किमर्थं विस्मितश्चारुदत्त प्रवहणस्थ जन दृष्ट्वा ? आर्यक दृष्ट्वा किमकरोत् स चारुदत्त ?

**स्वभावपरीक्षणम्**—विदूषकस्य चारुदत्तस्य च स्वभाव तैस्तैरुदाहरणैर्वर्णयत ।

**शब्दप्रयोगाः**—१ अस्मिन् पाठे विध्यर्थ-कृदन्तानि दर्शयत तेषामर्थं च तत्र तत्र विशदीकुरुत । २ प्रशस्तम्—निगडम्—निर्वृति—रक्षा—इत्येते शब्दा यस्मिन्नर्थेऽत्र प्रयुक्तास्त त विस्तरेण दर्शयत ।

**परीक्षणम्**—१ वर्धमानकस्यागमने केऽन्तराया उद्दीक्षिताश्चारुदत्तेन । २ केनोपमितमुद्यान प्रथमे श्लोके । सा पूर्णोपमा कथ भवति तद्विस्तरेण दर्शयत ।

**वृत्तम्**—अष्टमश्लोकस्य वृत्त प्रहर्षिणी । ( म्याशाभिर्मनजरगा प्रहर्षिणीयम् । )

| म | न | ज | र | ग |
|---|---|---|---|---|
| कृत्वैव | मनुज | पतेर्मं | हद् व्यली | क्रम |

---

# त्रयस्त्रिंशः पाठः ।

## धर्मे सत्यस्य माहात्म्यम् ।



अथात्र वेदप्रतिपाद्यस्य धर्मस्य मूलतत्त्व सत्यमस्ति । तथाहि शतपथ-ब्राह्मणे पठ्यते । 'स नैव व्यभवत् तच्छ्रेयोरूपमत्यसृजत धर्मम् । तदेतत्

क्षत्रस्य क्षत्र यद्धर्मस्तस्मात्पर नास्ति । अथो अबलीयान् बलीयास-माशासते धर्मेण यथा राज्ञैष्ट यो वै स धर्मः सत्यम्'इत्यादि । ऐतरेय-ब्राह्मणेऽपि—'ऋत वाव दीक्षा सत्य दीक्षा तस्माद्दीक्षितेन सत्यमेव वदितव्य' इति । यद्यपि मनुष्येषु सर्वदा सत्यमेव वदितु को नाम शक्नुयात् भ्रमप्रमादादिदोषेण कदाचिदप्यसत्यभाषण प्रसज्येत । तथापि यो वै स्वयमनुभूतमेव भाषितुमभ्यस्येत्तस्य प्रायशो नानृतभाषण स्यात् । मनुष्यशरीरे हि सत्यरूप चक्षुर्देवैर्निहितम् । अत एव कञ्चिदर्थ भाषमाण प्रत्याह लोकः । 'अयि भो यदात्थ, दृष्टवानसि तत्' । तत् दृष्टवान-स्मीति यदा स ब्रूते तदा श्रद्दधते जना नान्यथेति । स्पष्टश्चायमर्थोऽपि ब्राह्मण एवानुपद प्रदर्शित· । एव च ' यज्ञा नानाविधा दान व्रतानि नियमा यमाः । योगो ज्ञान चैवमाद्य रूप सत्यस्य वै बहु' ॥ तथा च ऋग्वेदे श्रूयते । ' ऋतस्य दृढा धरुणानि सन्ति पुरूणि चन्द्रा वपुषे वपूषि' इति । ऋतस्य सत्यरूपस्य धर्मस्य वपूंषि शरीराणि पुरूणि बहूनि सन्ति । तानि धरुणानि पतता जनाना धारकाणि दृढा दृढानि चन्द्रा आह्लादकानि च सन्तीति तदर्थ· । तस्माद्यो मनुष्यः सत्यात् प्रमाद्यति सोऽधर्मेणाभि भूतो महति सङ्कटे पतति । ततस्तस्य सङ्कटान्मुक्तये सत्यावलम्ब विना नान्यः कश्चिदुपायोऽस्ति । यो हि सत्य परिपालयन् वर्तेत स नूनमुत्तमा पदवीमारोहेत् ।

[ आर्यविद्यासुधाकरे ]

---

प्रश्नाः—किं नाम धर्मस्य मूलतत्त्वम ? तस्य माहात्म्य कथ वर्णित ब्राह्मण-ग्रन्थेषु ? केन कारणेन जनो व्यवहारेष्वसत्यभाषण उद्युक्तो भवति ? सत्या-सत्ययोरन्तर कथ ज्ञायते जनै ? सत्यस्य कानि रूपाणि वेदेषु वर्णितानि ?

**शब्दप्रयोगाः**—श्रेयोरूपम्–दीक्षा–धरुणानि–चन्द्रा इत्येतेषा पदानां स्थाने स्थाने यदौचित्य दृश्यते तत् स्पष्टीकुरुत ।

**दृष्टान्तः**—केनापि सचिवेन कस्मायपि राज्ञे सत्यासत्ययोरन्तर स्फुट प्रदर्शितम् । सा कथा विस्तरेण कथ्यताम् ।

व्यवहारेषु सत्यभाषणं श्रेयस्कर कथं भवति तदुदाहरणेन दर्शयत ।

---

# चतुस्त्रिंशः पाठः ।

## वसन्तवर्णनम् ।



नवाभिलाषस्य विलासिजन्तोरभीष्टसिद्धयर्थमिव प्रकृत्या ।
समीरितो भूमितलं वसन्त ऋतोरधीशः स्वयमागतोऽस्ति ॥ १ ॥
स मन्मथो नूतनवेशरम्यस्तं सत्वरं पृष्ठत एव याति ।
किं नाम मित्र परमप्यनुक्त न साहचर्यं भजते प्रियस्य ॥ २ ॥
श्रीखण्डशैलो द्युमणोर्वियोगान्निःश्वासकल्पं पवन जहाति ।
को नाम तूष्णीं सुहृदो जडोऽपि वियोगपीडासहने समीशः ॥ ३ ॥
विभाकरोऽसौ मलयाचलस्य निःश्वाससम्पर्कभयेन किं नु ।
नवीनदेशेक्षणकौतुकाद्वा द्रुतं द्रुत गच्छति तीव्रतापः ॥ ४ ॥
यो दक्षिणस्या दिशि मन्दतेजाः प्रवर्तते स्म प्रखरप्रतापः ।
कौबेरकाष्ठामुपगम्य सोऽत्र स्थानोपयोगः खलु तत्र हेतुः ॥ ५ ॥
हिमाद्विमुक्तो मिहिरोऽथवाऽस्मिन् हिमालय याति हिमं विहन्तुम् ।
सचेतनो नाम समीहते को ग्रहीतुमस्मिन् प्रतिशात्रवं न ॥ ६ ॥

कूजत्पतङ्गास्तरव· किमस्मिन्नान्दोलितै पल्लववाहुभि: स्वै ।
ऋतोरधीश हिमतीव्रशत्रु समाह्वयन्तीव समादरेण ॥ ७ ॥

वनस्थली पुष्पितवल्लरीभिर्विहङ्गनादै· श्रवणाभ्युपायै ।
गुञ्जद्द्विरेफै रमणीव भाति सयौवना भूषणभूषितेव ॥ ८ ॥

षडङ्घ्रयस्ते मधुमोदमत्ता पुष्पान्तरं स्वादुतर श्रयन्ति ।
पिका. सुकण्ठा सहकारशाखामाश्रित्य गायन्ति कल सुखेन ॥ ९ ॥

महीरुहा पल्लवपुष्पवन्त पुष्पाणि नित्य समधूनि भान्ति ।
मधूनि पेयानि च भृङ्गसार्थैर्भृङ्गा समग्रा ससुखा भवन्ति ॥ १० ॥

अस्मिन् सकामा युवतिर्न का स्यात् को न प्रदेशो रमणीयनाढ्य: ।
का वल्लरी पल्लविना न रम्या किं पुल्लपुष्प न मुदं ददाति ॥ ११ ॥

रक्तारविन्द सुषमाविभानं सरोगत धूमभभृङ्गयुक्तम् ।
अग्निस्फुलिङ्गोच्चयरेणुरम्य जानन्ति वह्निं स्मरकिङ्करौघा ॥ १२ ॥

सुवर्णपुष्पेण वन क्वचित् स्यात् सुवर्णवर्ण नवकिंशुकेन ।
नवारुणाभ ननु कुन्दपुष्पै· शुभ्र सुनील नवनीलपुष्पै· ॥ १३ ॥

स कुसुममधुगाभिर्वल्लरीभि समन्ता-
दधिगतसुषमोऽसौ रम्यदृश्यो वसन्त ।
भवतु कमलमालालङ्कृतो नीरचुम्बि-
मलयनगनभस्वाञ्छास्त्रवेश सुखाय ॥ १४ ॥

[ महदयानन्दे ]

---

**प्रश्ना:**—किमर्थं वसन्त जना 'ऋतोरधीश' इति वदन्ति ? कथ वहति पवनस्तदा ? कथ च तपन्ति रविकिरणा· ? का दिश प्रति चलति सूर्यो वसन्ते ? तेन किं भवति हिमाचलस्य ?

**परीक्षणम्**—कं भाव मनसि समुत्पादयति काव्यस्यास्य पठनम् । के श्लोका रम्यतमा वर्तन्तेऽर्थदृष्टया भाषादृष्टया च । अत्र कविर्यत् पश्यति शृणोति यच्चानुभवति तन्निवेदयत । तृतीये सप्तमे च श्लोके भूतार्थं कथमन्यथा प्रदर्शयति कवि· । 'निःश्वास'—'समादरेण' इति पदाभ्या किं सूचयति । दशमे श्लोके किं वर्णितं कविना । सा स्वभावोक्तिरिति कथं ज्ञायते ।

**समासाः**—नूतनवेशरम्य, नि श्वाससम्पर्कभयेन, मन्दतेजा·, कूजत्पतङ्गाः श्रवणाभ्युपायै, समधूनि, नवारुणाभम्, अधिगतसुषमः—इत्यादीना विग्रहान् कृत्वा नामानि कथयत ।

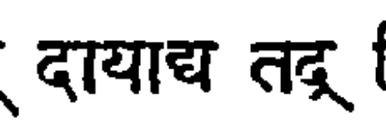
**शब्दप्रयोगाः**—द्वादशे चतुर्दशे च श्लोके यानि विशेषणपदानि सन्ति तेषामौचित्य प्रदर्शयत ।

**काव्यवृत्तम्**—अस्य काव्यस्य वृत्त कथयित्वा गणादिकान् दर्शयत ।

---

# पञ्चत्रिंशः पाठः ।

## श्रीकृष्णदौत्यम् ।



**दुर्योधनः**—भो दूत,

धर्मात्मजो वायुसुतश्च भीमो भ्रातार्जुनो मे त्रिदशेन्द्रसूनुः ।
यमौ च तावश्विसुतौ विनीतौ सर्वे सभृत्याः कुशलोपपन्नाः ॥ १ ॥

**वासुदेवः**—सदृशमेतद् गान्धारीपुत्रस्य । अथ किमथ किम् । कुशलिनः सर्वे । भवतो राज्ये शरीरे बाह्याभ्यन्तरे च कुशलमनामयं च पृष्ट्वा विज्ञापयन्ति युधिष्ठिरादयः पाण्डवाः ।

अनुभूतं महद् दुःखं सम्पूर्णः समयः स च ।
अस्माकमपि धर्म्यं यद् दायाद्य तद् विभज्यताम् ॥ २ ॥ इति ।

**दुर्योधनः**—कथ कथं दायाद्यमिति । भोः,

वने पितृव्यो मृगयाप्रसङ्गतः

कृतापराधो मुनिशापमाप्तवान् ।
तदाप्रभृत्येव स दारनिःस्पृहः
परात्मजाना पितृनां कथ व्रजेत् ॥ ३ ॥

**वासुदेवः**—पुराविद भवन्तं पृच्छामि—

विचित्रवीर्यो विषयी विपत्तिं
क्षयेण यातः पुनरम्बिकायाम् ।
व्यासेन जातो धृतराष्ट्र एष
लभेत राज्य जनकः कथं ते ॥ ४ ॥

मा मा भवान्,
एव परस्परविरोधविवर्धनेन
शीघ्र भवेत् कुरुकुल नृप नामशेषम् ।
नन् कर्तुमर्हति भवानपकृष्य रोष
यत् त्वां युधिष्ठिरमुखाः प्रणयाद् ब्रुवन्ति ॥ ५ ॥

**दुर्योधनः**—भो दूत, न जानाति भवान् राज्यव्यवहारम् ।
राज्यं नाम नृपात्मजै. सहृदयैर्जित्वा रिपून् भुज्यते
तल्लोके न तु याच्यते न तु पुनर्दीनाय वा दीयते ।
काङ्क्षा चेन्नृपतित्वमाप्तुमचिरात् कुर्वन्तु ते साहसं
स्वैरं वा प्रविशन्तु शान्तमतिभिर्जुष्टं शमायाश्रमम् ॥ ६ ॥

**वासुदेवः**—भोः सुयोधन, अलमलं बन्धुजने परुषमभिधातुम् ।
पुण्यसञ्चयसंप्राप्तामधिगम्य नृपश्रियम् ।
वञ्चयेद् यः सुहृद्बन्धून् स भवेद् विफलश्रमः ॥ ७ ॥

**दुर्योधनः**—भो दूत,
श्याल तव गुरोर्भूप कंसं प्रति न ते दया ।
कथमस्माक्रमेव स्यात् तेषु नित्यापकारिषु ॥ ८ ॥

**वासुदेवः**—अलं तन्मद्दोषतो ज्ञातुम् ।

कृत्वा पुत्रवियोगार्तौ बहुशो जननीं मम ।
वृद्ध स्वपितरं बद्ध्वा हतोऽयं मृत्युना स्वयम् ॥ ९ ॥

**दुर्योधनः**—सर्वथा वञ्चितस्त्वया कंसः । अलमात्मस्तवेन । न शौर्यमेतत् । पश्य—

जामातृनाशव्यसनाभितप्ते रोषाभिभूते मगधेश्वरेऽथ ।
पलायमानस्य भयातुरस्य शौर्यं तदेतत् क्व गतं तवासीत् ॥ १० ॥

**वासुदेवः**—भोः सुयोधन, देशकालावस्थापेक्षि खलु शौर्यं नयानुगामिनाम् । इह तिष्ठतु तावदस्मद्गतः परिहासः । स्वकार्यमनुष्ठीयताम् ।

कर्तव्यो भ्रातृषु स्नेहो विस्मर्तव्या गुणेतराः ।
सम्बन्धो बन्धुभिः श्रेयान् लोकयोरुभयोरपि ॥ ११ ॥

**दुर्योधनः**—

देवात्मजैर्मनुष्याणां कथं वा बन्धुता भवेत् ।
पिष्टपेषणमेतावत् पर्याप्तं छिद्यतां कथा ॥ १२ ॥

**वासुदेवः**—( आत्मगतम् )

प्रसाद्यमानः साम्नाऽयं न स्वभावं विमुञ्चति ।
हन्त संक्षोभयाम्येन वचोभिः परुषाक्षरैः ॥ १३ ॥

( प्रकाशम् ) भोः सुयोधन, किं न जानीषेऽर्जुनस्य बलपराक्रमम् ?

**दुर्योधनः**—न जाने ।

**वासुदेवः**—भोः श्रूयताम्—

कैरातं वपुरास्थितः पशुपतिर्युद्धेन सन्तोषितो
वह्नेः खाण्डवमश्नतः सुमहती वृष्टिः शरैश्छादिता ।
देवेन्द्रार्तिकरा निवातकवचा नीताः क्षय लीलया
नन्वेकेन तदा विराटनगरे भीष्मादयो निर्जिताः ॥ १४ ॥

अपि च । तवापि प्रत्यक्षमपरं कथयामि ।

ननु त्वं चित्रसेनेन नीयमानो नभस्तलम् ।
विक्रोशन् घोषयात्राया फाल्गुनेनैव मोक्षित ॥ १५ ॥

किं बहुना ।

क्षन्तुमर्हसि मद्वाक्याद् गच्छार्धं धृतराष्ट्रज ।
अन्यथा सागरान्ता गा हरिष्यन्ति हि पाण्डवाः ॥ १६ ॥

**दुर्योधनः**—कथं कथं हरिष्यन्ति हि पाण्डवा ।

प्रहरन्ति यदि युद्धे मान्यो भीमस्तथा
प्रहरन्ति यदि साक्षात् पार्थरूपेण शक्रः ।
पक्षवचनदक्षैस्त्वद्वचोभिर्न दास्ये
तृणमपि पितृभुक्ते वीर्यगुप्ते स्वराज्ये ॥ १७ ॥

**वासुदेवः**—भो. कुरुकुलकलङ्कभूत, अयशोभाजन, वयं किल तृणान्नगभिभाषकाः ।

**दुर्योधनः**—भो गोपालक, तृणान्नगभिभाष्यो भवान् ।

अवध्या प्रमदा हत्वा हय गोवृषमेव च ।
मद्वानपि मुनिर्हन्तो वक्तुमिच्छसि साधुभि. ॥ १८ ॥

**वासुदेवः**—भो सुयोधन, ननु क्षिपसि मान् ।

**दुर्योधनः**—ननु सत्यमेवैतत् ।

**वासुदेवः**—गच्छामि तावत् ।

**दुर्योधनः**—गच्छ गच्छ पशुखुरोद्धतरेणुरूषिताङ्गो व्रजमेव । विपरीतकृत कालः ।

**वासुदेवः**—एवमेवास्तु । न वयमनुक्तसन्देशा गन्तुमिच्छाम । तदाकर्ण्यतां युधिष्ठिरस्य सन्देश ।

**दुर्योधनः**—आः, अभाप्यस्त्वम् ।



अहमवधृतपाण्डरातपत्रो द्विजवरहस्तधृताम्बुसिक्तमूर्धा ।
अवननतनृपमण्डलानुयात्रैः सह कथयामि भवद्विधैर्न भाये ॥ १९ ॥

**वासुदेवः**—न व्याहरति किल मां सुयोधन । भो',

शठ बान्धवनिःस्नेह काक केकर पिङ्गल ।
त्वदर्थाद् कुरुवंशोऽयमचिरान्नाशमेष्यति ॥ २० ॥

भो भो राजानः, गच्छामस्तावत् ।

**दुर्योधनः**—कथ यास्यति किल केशवः । दुःशासन, दुर्मर्षण, दुर्मुख, दुर्बुद्धे, दुष्टेश्वर, दृतसमुदाचारमतिक्रान्तः केशवो वध्यताम् । कथमशक्ताः । दुःशासन, न समर्थ. खल्वसि ।

करितुरगनिहन्ता कंसहन्ता स कृष्णः
पशुपकुलनिवासादानुजीव्यानभिज्ञः ।
हतभुजबलवीर्यः पार्थिवाना समक्षं
स्ववचनकृतदोषो वध्यतामेष शीघ्रम् ॥ २१ ॥

अयमशक्तः । मातुल, वध्यतामय केशव । कथ पराङ्मुख. पतति । भवतु, अहमेव पार्ष्णिर्बध्नामि ।

( पाशमुद्यम्योपसर्पति । )

**वासुदेवः**—कथ मवितुकामो मा किल सुयोधनः । भवतु, सुयोधनस्य सामर्थ्यं पश्यामि ।

( विश्वरूपमास्थित । )

**दुर्योधनः**—भो दूत,

सृजसि यदि समन्ताद् देवमायाः स्वमायाः
प्रहरसि यदि वा त्वं दुर्निवारैः सुरास्त्रैः ।
हयगजवृषभाणां पातनाज्जातदर्पो
नरपतिगणमध्ये वध्यसे त्व मयाद्य ॥ २२ ॥

आः, तिष्ठेदानीम् । कथं न दृष्टः केशवः । अयं केशवः । अहो ह्रस्वत्व केशवस्य । आः, तिष्ठेदानीम् । कथ न दृष्टः केशवः । अय केशवः । अहो दीर्घत्व केशवस्य । कथं न दृष्टः केशवः । अय केशवः । सर्वत्र मन्त्रशालाया केशवा भवन्ति । किमिदानीं करिष्ये । भवतु, दृष्टम् । भो भो राजानः, एकैकैकः केशवो वध्यताम् । कथ स्वयमेव पाशैर्बद्धाः पतन्ति राजानः । साधु, भो जृम्भक, साधु ।

मत्कार्मुकोदरविनि.सृतबाणजालै-
र्विद्ध क्षरत्क्षतजरञ्जितसर्वगात्रम् ।
पश्यन्तु पाण्डुतनयाः शिविरोपनीत
त्वां वाष्परुद्धनयना· परिनिःश्वसन्तः ॥ २३ ॥

( निष्क्रान्त । )

[ दूतवाक्ये ]

---

**वृत्तम्**—अस्मिन् पाठे वर्तमानाना श्लोकानां सलक्षण सोदाहरण वृत्तानि कथयत ।

**प्रश्नाः**—वासुदेव दृष्ट्वा कि पृच्छति दुर्योधन प्रथमम् ? किमर्थं पाण्डवेभ्यो राज्यार्ध दातु नेच्छति दुर्योधनः ? को दोपो दर्शित कृष्णस्य दुर्योधनेन । कुत्र दृष्ट पराक्रमोऽर्जुनस्य ? केनोद्भूत कलह कृष्णसुयोधनयो ? किं कर्तुमुद्यतो दुर्योधन· कृष्णस्य ? कथमात्मान रक्षितवान् वासुदेव ?

**नाट्यम्**—एष सवाददछात्राभ्या छात्रगणाभ्या वा नाट्यताम् ।

**शब्दप्रयोगाः**—दायाद्यम्—परात्मजा—परुषम्—परिहास.—पिष्टपेषणम्—कैरातम्—गाम्—गोपालक—जृम्भक । [ एते शब्दा केष्वर्थेषु प्रयुक्ता अस्मिन् सवादे । तेष्वधोरेखितयो. शब्दयो सिद्धि स्पष्टीक्रियताम् । ]

**कथावर्णनम्**—पञ्चदशे श्लोके या कथा निरूपिता सा विस्तरेण लिख्यताम् ।

**सारकथनम्**—येन क्रमेण कृष्णदुर्योधनयो सवादोऽभवत् स सक्षेपत· कथ्यताम ।

# षड्त्रिंशः पाठः ।

## भार्गव-दाशरथ्योः सङ्ग्रामः ।



**लक्ष्मणः**—( सकौतुकम् )

मौर्वी धनुस्तनुरियं च बिभर्ति मौञ्जीं
बाणाः कुशाश्च विलसन्ति करे शिताग्राः ।
धारोज्ज्वलः परशुरेष कमण्डलुश्च
तद्वीरशान्तरसयोः किमयं विकारः ॥ १ ॥

आर्य, किं पुनरिदं ब्रह्मक्षत्रवर्णात्मकं चित्रमिव स्फुरति ?

**रामः**—वत्स, न विदितं ते ? नन्वयं स भगवान् भार्गवो येन क्रौञ्चमहीधरशिखरं विद्धं छिन्नं च यस्य क्रीडाकुठारेण हैहयपतेरुद्दाम-दो.काननम् ।

**लक्ष्मणः**—तर्हि विस्मयनीयशीलो भगवान् ।

**रामः**—विस्मयनीयशीलानां शिखामणिरिति वक्तव्यम् । ( उपसृत्य ) भगवन्, एष सानुजस्य मे प्रश्रयरमणीयः प्रणाम. ।

**जामदग्न्यः**—समरविजयी भूयाः ।

**रामः**—भगवन्, अनुगृहीतोऽस्मि ।

**भार्गवः**—( स्वगतम् )

( सकरुणम् ) रामे चन्द्राभिरामे विनयवति शिशौ किं प्रकुप्यातिमात्रं
( सक्रोधम् ) हुं चापं चन्द्रमौलेश्चपलमतिरसाविक्षुभच्च बभञ्ज ।
( पुनः सानुक्रोशम् ) बालो वैधव्यदीक्षां जनकनृपसुतां नार्हतीयं मदस्त्राद्
( पुनः सामर्षम् ) आः शान्तो मे कुठारः कथमयमधुना रेणुकाकण्ठशत्रुः ॥ २ ॥

( प्रकाशम् ) दाशरथे, इयमसौ मे त्वयि समुदाचारानुसारिणी वाग्वृत्तिरेव ।

**रामः**—( विहस्य ) मनोवृत्तिस्तु कीदृशी ?

**भार्गवः**—चण्डीशकार्मुकविमर्दकयोस्तव बाह्वोर्दर्प कठिनेनानेन कुठारेण शातयामि ।

**रामः**—भगवन्, निग्रहानुग्रहयोः स्वाधीनोऽय जनः । परं ते कोपबीज ज्ञातुमिच्छामि ।

**भार्गवः**—अहो दर्पान्धता । ननु रे न भग्न किं त्वया जगद्गुरु-शरासनम् ?

**रामः**—भगवन्, अलीकलोकवार्तया निरपराधे मयि मुधा कोप-कलङ्कितोऽसि ।

**भार्गवः**—तत् किं स्वस्ति हरकार्मुकाय ?

**रामः**—नहि नहि ।

**भार्गवः**—तत् कथ निरपराधोऽसि ।

**रामः**—

मया स्पृष्ट न वा स्पृष्ट कार्मुक पुरवैरिणः ।
भगवन्नात्मनैवेदमभ्यत करोमि किम् ॥ ३ ॥

**भार्गवः**—आः, कथ रे चन्दनदिग्ध नाराच निधाय हृदय मे शीतलयसि ? तदलमनेन । ( कुठारमुद्यम्य ) हे राम हरकार्मुकभङ्गसञ्जात-पातक, तवैष कठोरधारो निष्करुणः कुठारः कण्ठ विशतु । तत् प्रवीरो भव ।

**रामः**—

हार· कण्ठ विशतु यदि वा तीक्ष्णधारः कुठारः
क्षीणा नेत्राण्यधिवसतु नः कज्जलं वा जल वा ।
संपश्यामो ध्रुवमिह सुख प्रेतभर्तुर्मुख वा ।
यद्वा तद्वा भवतु न वय ब्राह्मणेषु प्रवीराः ॥ ४ ॥

**भार्गवः**—( सामर्षम् ) कथ मां प्रणतिपात्र मुनिमात्र मन्यसे ? कथ क्षत्रियजातिगर्वितो ब्राह्मणजातिं तृणाय मन्यसे ? स एव जामदग्न्यः खल्वह यः क्षत्रकण्ठविगलदुष्णासृजोऽञ्जलीन् समर्प्य पितृस्तोषयामास ।

**रामः**—हे भृगुतिलक, आत्मनो यशोवित्त मुधा मा हारय ।

**भार्गवः**—कथ रे हारयिष्यामि ? ( विमृश्य ) अथवा—

किं नाम वाग्डम्बरपण्डितेषु
युष्मासु वाणी. प्रचुरा प्रयुङ्क्ते ।
बाणान् रिपुप्राणहरान् मदीयान्
सर्वेऽपि यूय सहिताः सहध्वम् ॥ ५ ॥

**रामः**—नन्वहमेव सहिष्ये ।

**भार्गवः**—रे तव गुरुरपि कौशिको मन्नाराचभयात् पद्मासनं भगवन्त ब्राह्मीं तनु ययाचे ।

**रामः**—कथ गुरूनप्यधिक्षिपसि ? तदतःपरं न सहिष्ये । ( साटोपम् ) अये जामदग्न्य, तत् कुलिशकठिन कोदण्ड रामेणैवानेन भग्नम् । भवतु तत् त्रैयक्ष वा नारायणीय वा । मम दोर्विलासस्तन्न गणयति ।

**भार्गवः**—साधु रे क्षत्रियपोत साधु, यत् किल जामदग्न्य-नाम्नश्चण्डधाम्नः पुरतः खद्योत इव विद्योतसे ।

**रामः**—अलमल वाग्डम्बरेणानेन । क्रियतां यथाभिलषितम् ।

**भार्गवः**—यदि शक्तोऽसि तदेहि । समरक्षमा क्षमामवतरावः ।

( इति निष्क्रान्तौ । )

[ प्रसन्नराघवे ]

---

**प्रश्नाः**—किं किमासीत् परशुरामस्य हस्तयो. शरीरे च ? क पराक्रम-कृतस्तेन ? कीदृग आशीर्वादो जामदग्न्यस्य ? किमर्थं कुपितो भार्गवो राम-चन्द्राय ? किमर्थं रामचन्द्र· प्रथम भार्गवेण सह योद्धु नोद्यतोऽभवत् ? अनन्तरं केन कारणेन क्रुद्धो रामचन्द्र· प्रवीरोऽभवत् ?

नाट्यम्—एष सवादरूपेण गानिनयं नाटयितव्यः ।

परीक्षणम्—१ प्रथमे श्लोके ये पंचवीरजातयस्तासां निर्देशः । २ द्वितीये श्लोके तिसृणां पर्यायेण भावान्तर नाट्यति भागेन. । ३ चतुर्थे श्लोके यानि पदानि रत्नीयानि सन्ति । तथ यानिप्रायस्तैः पोषितो भवति । ४ 'न वय ब्राह्मणेषु प्रवीराः' इति वाक्यवचनेन तिसृणां हानो जातायाम् ।

स्वभाववर्णनम्—भागेषागमनन्तरो रसानां स्थाने स्थाने यथ प्रसंगेन सविना तद्विशेषोक्तियनाम ।

वृत्तम्—द्वितीयश्लोकस्य वृत्त वसन्ता । ( सर्वेषां प्रथम त्रिभुवनियति-युता वसन्ता कीर्तितेयम् । )

म ' र भ न ग य र
राजे न ब्राह्मिरा ने विन ' यति शिशो रि प्रकृत्या विनाशम् ।

चतुर्थश्लोकस्य वृत्त शिखरिणी । ( रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी । )

इतरेषा श्लोकाना वृत्तानि रथया ।

---

# सप्तत्रिंशः पाठः ।

## अनुशासनम् ।

वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति । सत्य वद । धर्म चर । स्वाध्यायान्मा प्रमदः । आचार्याय प्रिय धनमाहृत्य प्रजातन्तु मा व्यवच्छेत्सीः । सत्यान्न प्रमदितव्यम् । धर्मान्न प्रमदितव्यम् । कुशलान्न प्रमदितव्यम् । भूत्यै न प्रमदितव्यम् । स्वाध्यायप्रवचनाभ्या न प्रमदितव्यम् । देवपितृकार्याभ्या न प्रमदितव्यम् ।

मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । अतिथिदेवो भव । यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि, नो इतराणि ।

यान्यस्माक सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि, नो इतराणि ।

ये के चास्मच्छ्रेयासो ब्राह्मणास्तेषा त्वयासनेन न प्रश्वसितव्यम् ।

श्रद्धया देयम् । अश्रद्धयाऽदेयम् । श्रिया देयम् । ह्रिया देयम् । भिया देयम् । संविदा देयम् ।

अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात् ये तत्र ब्राह्मणा सम्मर्शिन· युक्ता आयुक्ता अलूक्षा धर्मकामा स्यु. यथा ते तत्र वर्तेरन् तथा तत्र वर्तेथा ।

अथाभ्याख्यातेषु ये तत्र ब्राह्मणा. सम्मर्शिन युक्ता आयुक्ता· अलूक्षा धर्मकामाः स्यु· यथा ते तेषु वर्तेरन् तथा तेषु वर्तेथा· । इति ।

एष आदेश । एष उपदेश । एषा वेदोपनिषत् । एतदनुशासनम् । एवमुपासितव्यम । एव चैतदुपास्यम् ।

[ तैत्तिरीयारण्यके ]

**प्रश्नाः**—एष उपदेश केन कस्मै वा कृत ? कस्मात्र प्रमदितव्य छात्रेण गृहस्थेन च ? के प्रतिषिद्ध वन्द्या गृहस्थेन ? किमनुस्मरणीय छात्रेण गृहस्थेन च ? किं कथ वा देय गृहस्थेन ? कथ वर्तितव्य गृहस्थेनेतरं सह ?

**परीक्षणम्**—१ पुरा भरतवर्षे कथ विद्यार्जनमकुर्वन् बाला । २ कस्मिन् समये गुरुरेनमुपदेशमकरोत् । ३ कीदृशोऽनुरागो गुरोश्छात्रेषु । कीदृशश्चाऽदरो विद्यार्थिना गुरुषु ।

**शब्दप्रयोगाः**—प्रमद – अनवद्यानि – प्रश्वसितव्यम – विचिकित्सा – अलूक्ष· सम्मर्शिन –इत्येते शब्दा केष्वर्थेषु प्रयुक्ता । सम्प्रति वाङ्मयेषु प्रायो न ते दृश्यन्ते । अस्मिन् पाठे किमन्यद्दृश्यते यत्सम्प्रति संस्कृतभाषाया नियम· विरुद्ध भवेत् ।

# अंष्टात्रिंशः पाठः ।

## उपदेशपञ्चकम् ।

वेदो नित्यमधीयतां तदुदितं कर्म स्वनुष्ठीयता
तेनेशस्य विधीयतामपचितिः काम्ये मतिस्त्यज्यताम् ।
पापौघः परिधूयता भवसुखे दोषोऽनुसन्धीयता-
मात्मेच्छा व्यवसीयता निजगृहात्तूर्णं विनिर्गम्यताम् ॥ १ ॥
सङ्गः सत्सु विधीयता भगवतो भक्तिर्दृढा धीयतां
शान्त्यादि. परिचीयतां दृढतर कर्माशु सन्त्यज्यताम् ।
सद्विद्वानुपसृप्यता प्रतिदिन तत्पादुका सेव्यतां
ब्रह्मैकाक्षरमर्थ्यता श्रुतिशिरोवाक्य समाकर्ण्यताम् ॥ २ ॥
वाक्यार्थश्च विचार्यतां श्रुतिगिरः पक्षः समाश्रीयता
दुस्तर्कात् सुविरम्यतां श्रुतिमतस्तर्कोऽनुसन्धीयताम् ।
ब्रह्मास्मीति विभाव्यतामहरहर्गर्वः परित्यज्यता
देहेऽहमतिरुज्झता बुधजनैर्वादः परित्यज्यताम् ॥ ३ ॥
क्षुद्व्याधिश्च चिकित्स्यता विधिवशात् प्राप्तेन सन्तुष्यता
स्वाद्वन्न न तु याच्यता प्रतिदिन भिक्षौषध भुज्यताम् ।
शीतोष्णादि विषह्यता न तु वृथा वाक्यं समुच्चार्यता-
मौदासीन्यमभीप्स्यता जनकृपानैष्ठुर्यमुत्सृज्यताम् ॥ ४ ॥
एकान्ते सुखमास्यता परतरे चेतः समाधीयतां
पूर्णात्मा सुसमीक्ष्यतां जगदिदं तद्बाधितं दृश्यताम् ।
प्राक्कर्म प्रविलाप्यतां चितिबलान्नाप्युत्तरैः श्लिष्यता
प्रारब्ध त्विह भुज्यतामथ परब्रह्मात्मना स्थीयताम् ॥ ५ ॥

[ श्रीशङ्कराचार्याष्टकेषु ]

**काव्यवृत्तम्**—गार्दूलविक्रीडितम् । ( सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगा गार्दूलविक्रीडितम् । )

| म | स | ज | स | त | त | ग |
|---|---|---|---|---|---|---|
| वेदो नि | त्यमधी | यता त | दुदित | कर्म स्व | नुष्ठीय | ताम् |

**प्रश्नाः**—किमध्ययन हितावह मानवस्य ? कीदृग कर्म जनै कार्य त्याज्य वा ? केषा सङ्गो विधेय ? कस्य ध्यान सर्वदानुष्ठेयम ? कीदृगमत्र स्वीकरणीय मुमुक्षुणा ? कीदृग सुखमनुत्तम शाश्वत च विद्यते ?

**परीक्षणम्**—कस्मै कृत एष उपदेश शङ्कराचार्यै । को रस प्रधानोऽस्मिन् काव्ये । किं पद्य बहुधा प्रयुक्त तत्र । कश्च तस्य पठनस्य परिणामो भवति मनसि । पञ्चसु श्लोकेषु ये विषयाः क्रमेण वर्णितास्तान् सक्षेपत· कथयत । तेषा परस्परानुसन्धान विस्तरेण प्रदर्शयत ।

**चरितकथनम्**—श्रीशङ्कराचार्यचरित सक्षेपतो वर्णयत । तत्र चास्मिन् काव्ये वर्णितो जीवनक्रमो दृश्यते न वेति कथयत ।

---

# नवत्रिंशः पाठः ।

## पार्वतीविवाह-सम्भारवर्णनम्

**कञ्चुकी**—आज्ञप्तोऽस्मि सकलकुलाचलचक्रवर्तिना हिमवता यथा—शिलाधर, पूर्वेद्युरेव परमेश्वरप्रहिताः सारुन्धतीकाः सप्तर्षय. समागत्य लब्धवराया वत्साया दिनमिद विवाहमङ्गल्योग्यमकल्पयन् । तद्भवता चौषधिप्रस्थवासिन. पौराः पुरं परिष्क्रियतामिति नियोक्तव्या इति । तन्प्रभो-र्नियोगमनुतिष्ठामि । ( इति परिक्रम्य सर्वतो विलोक्य ) भो भो. पौराः,

सन्नह्यन्ता विचित्रा. प्रतिभवनमिह श्रेणयस्तोरणाना-
मुन्नेप्यन्ता समन्ताद्गगनतललिहः केतनानां पताकाः ।

संसिच्यन्तां पटीरद्रवभरितजलैर्वीथयो मुक्तपुष्पाः
संप्राप्तोऽसावुमायाः परिणयदिवसो विश्वमाङ्गल्यहेतुः ॥ १ ॥

( आकाशे ) किं ब्रूथ—भवद्वचनात्प्रागेव सर्वमस्माभिर्द्विगुणमाचरितमिति । ( सर्वतो निर्वर्ण्य सहर्षम् ) अहो, अस्मदादेशात्प्रागेव प्रवृत्तमहोत्सवं नगरम् । तथा हि—

एषा चन्दनमालिका विरचिता चूतप्रवालैर्नवै
रम्भास्तम्भपरिष्कृतेषु भवनद्वारेषु संलक्ष्यते ।
आमन्द्र्यन्वनयः क्वणन्ति मुरजा मूर्छन्ति तन्त्रीस्वराः
सिञ्जानैर्मणिभूषणैस्तत इतो नृत्यन्ति वाराङ्गनाः ॥ २ ॥

इतश्च,

उत्सर्पदागरुधूपपरम्पराभि-
प्रादुर्भवत्यभिनवो जलदागमोऽयम् ।
उन्नद्धतोरणमणिप्रभया स्फुरन्त्या
सञ्जायते च शतमन्युशरासनश्रीः ॥ ३ ॥

नटेन प्रवर्तमानं पुरपरिष्कारं प्रभवे निवेदयामि ।

[ ततः प्रविशति विविक्तस्थानमधिवसन् हिमवान् । ]

**हिमवान्**—

पूर्वं नारदसूचनेन महता चन्द्रार्धचूडामणि-
र्जामातेत्यभवत् पुनस्तदनु तत्सम्भ्रान्तिराकाङ्क्षिता ।
लब्धोऽसौ तपसा मया दिनमिदं तस्याश्च वैवाहिकं
जातो विघ्नगणानतीत्य कृतिनामद्याहमग्रेसरः ॥ ४ ॥

**शिलाधरः**—( उपसृत्य ) जयतु स्वामी ।

**हिमवान्**—किं पुरपरिष्कारः प्रवर्तितो भवता ?

**शिलाधरः**—स्वामिन्, अस्मदीयोऽयमुत्सव इति प्रत्येक पौराणामभिमानः । कथं परिहीयते पुरपरिष्कारः । सर्वे द्विगुणमाचरित पौरैः ।

**हिमवान्**—शिलाधर, किं सर्वे पर्वताः पार्वतीपरिग्रहमङ्गल द्रष्टुमागताः ।

**शिलाधरः**—स्वामिन्नवधार्यताम् ।

भूपङ्केरुहकर्णिकायिततनुर्मेरुः सुराणा प्रियो
योक्त्रीभूतभुजङ्गराजकपणास्निग्धोपलो मन्दरः ।
विन्ध्यो व्योमनि भानुमालिपदवीजङ्घालशृङ्गावलिः
साक सम्प्रति गन्धमादनमुखैस्त्वां द्रष्टुमभ्यागताः ॥ ५ ॥

**हिमवान्**—अथ कैलासः किं करोति ?

**शिलाधरः**—स्वामिन्, स खलु जामातृपक्षस्थितेनैव सार्धमागमिष्यति ।

**हिमवान्**—युज्यते । अथ विश्वावसुप्रभृतय आगता गन्धर्वाः सत्रधूगणाः ?

**शिलाधरः**—

आतोद्यपाणयः सर्वे गन्धर्वाः सत्रधूगणाः ।
उपवीणयितुं प्राप्ता मानयन्तस्तवोत्सवम् ॥ ६ ॥

**हिमवान्**—आगताः किमप्सरसः सार्धममरैः ?

**शिलाधरः**—श्रूयताम् ।

विद्युद्वल्लीवितानव्यतिकरसुपमां व्योम्नि विस्तारयन्त्यः
कान्त्या नीलोत्पलानां श्रियमिव नयनैर्दिङ्मुखैर्दर्शयन्त्यः ।
ज्योत्स्नालक्ष्मीं दिवापि स्मितरुचिविसरैर्विप्वगुत्पादयन्त्यः
सर्वाः स्वर्वारयोषा सममसरगणैरागताः प्रीतये नः ॥ ७ ॥

**हिमवान्**—यद्येव मन्तःपुरं गत्वा भवान् पार्वती सम्यगल-ङ्क्रियतामित्यभिधत्ताम् ।

**शिलाधरः**—यथादिष्टं स्वामिना तथा सर्वं सम्पादयिष्यामि ।

( इति निष्क्रान्तः । )



---

**प्रश्नाः**—किमाज्ञप्तं हिमवता ? किमर्थं नगरी परिष्क्रियते ? कञ्चुकिना किं दृष्टं नगर्याम् ? ततस्तेन किं कृतम् ? कृतिनामहमद्याग्रेसर. इति कस्मात् कारणान्मन्यते हिमवान् ? के के पर्वता· पार्वतीविवाहमङ्गल द्रष्टुमागता. ? केऽन्ये प्राप्ता औषधिप्रस्थम् ? किं कर्तुमादिष्ट. शिलाधरो हिमवता ?

**वर्णनम्**—केषु केषु समारम्भेषु नगरी समलङ्क्रियते । अलङ्करणप्रकारांश्च विस्तरेण वर्णयत ।

**शब्दप्रयोगाः**—उपसर्गयुक्तानामेतेषा धातूनामर्था कथ मियन्ते तदुदा-हरणैर्दर्शयत ।—कृ, विद्, स्था, नी, हा ।

**समासाः**—लब्धवरा । प्रतिभवनम् । स्वर्वारयोषाः । चन्द्रार्धचूडामणि· । परिग्रहमङ्गलम् । सवधूगणा. ।

**परीक्षणम्**—( १ ) अस्मिन् पाठे क श्लोको रुचिरतम. किमर्थं च तद्विस्तरेण कथ्यताम् । ( २ ) अस्मिन् पाठे पौराणां मनोवृत्तियैः पदैः सूचिता भवति तेषामौचित्य स्वारस्य च दर्शयत ।

**वृत्तम्**—अस्मिन् पाठे वर्तमानानां श्लोकानां सलक्षणानि वृत्तानि कथयत ।

---

# चत्वारिंशः पाठः ।

## पार्वतीविवाहवर्णनम् ।

( नेपथ्ये )

जम्भारे भव पार्श्वतः परिसरेणायाहि लक्ष्मीपते
वेधाः स्वस्त्ययनान्यधीष्ट मुनयः प्रब्रूत रौद्रीमृचम् ।
चन्द्रार्कावपि चामरे विधुनुतां छत्रीभवाहीश्वर
प्रष्ठा रुद्रगणा. प्रयात पवन स्यन्दस्व मन्दोदयः ॥ १ ॥

**हिमवान्**—भगवन्नारद, कोऽयं देवानामिव कोलाहलः श्रूयते ?

**नारदः**—सकलजगदुत्पत्तिस्थितिप्रलयैरुद्घुष्यमाणमहिमा चराचरगुरुस्ते जामाता चटुलविवाहवेषमास्थाय सह देवगणैरित एवाभिवर्तते । अयं कलकलस्तत्पुरःसरनन्दिनः प्रोत्सारणाया । तद्भवानर्घ्यपाणिः प्रत्युद्यातु भगवन्तमिन्दुशेखरम् ।

( ततः प्रविशति गृहीतविवाहवेषः शङ्करो देवलोकश्च । )

**शङ्करः**—( शार्ङ्गिणं प्रति ) अमरावतीमतिक्रम्य शोभते पुरमिद्मोषधिप्रस्थम् ।

**शार्ङ्गी**—किं परिहीयते महेन्द्रान्महिमहेन्द्रः ।

**शङ्करः**—( अवलोक्य ) अभ्युद्गच्छति मामगाधिराजः । तद्वाहनादवतीर्य यास्यामः । ( तथा करोति । )

**हिमवान्**—

अचार्मणानामपि दूरमक्ष्णामकर्तृकाणां वचसामभूमिम् ।
जामातरं द्रष्टुममुं गिरीशं कियन्ति पुण्यानि मया कृतानि ॥ २ ॥

( इत्युपसर्पति । )

**शङ्करः**—( विलोक्य )

अतिगुरुचरणक्रमैर्वितन्वन्नवनमितोन्नमितस्थलामित्रोर्वीम् ।
विनयमुपदिशन्निवात्मभाजामयमुपसर्पति मामगाधिराजः ॥ ३ ॥

( हिमवानर्घ्यमुपहरति । शङ्करः सप्रणाम गृह्णाति । )

( हिमवान् सलज्ज मुखमवनमयति । )

( जामातर पुरस्कृत्य हरिविरञ्चिमुखाः परिक्रामन्ति । )

**ब्रह्मा**—भगवन्, कुत्र वैवाहिकी वेदी ?

**हिमवान्**—इत इतो भवन्तः ।

( सर्वे उपसर्पन्ति । )

**बृहस्पतिः**—हिमवन्, प्रत्यासन्नो मुहूर्तः ।

( तत प्रविशति जयाविजयाभ्या सह पार्वती । )

**पार्वती**—अद्य खलु मे मनोरथकल्पद्रुमः फलं दर्शयति ।

**जया**—( सस्मितम् ) हला पार्वति, एतावत्तव प्रियसख्यावपि आवां जाते ।

**पार्वती**—( सासूयम् ) हला विजये, किमेषा भणति ?

**विजया**—हला पार्वति, एषा सरसालापपेशलत्वं दर्शयति । ( इत्युपसर्पति । )

**ब्रह्मा**—( शार्ङ्गिणं प्रति ) भगवन्, सर्वे देवाः सह भूतगणैर्यथा-स्थानमुपविशन्तु ।

( सर्वे तथा कुर्वन्ति । )

**हिमवान्**—अस्मत्पक्षाः कुलपर्वताश्च कैलासेन समं वामपार्श्वमुप-विशन्तु ।

( कुलपर्वताश्च तथा कुर्वन्ति । )

**शङ्करः**—( पार्वतीं विलोक्य आत्मगतम् )



एषा विशेषरम्या विवाहवेषेण मोहनेन दृशा ।
प्रतिभाति मानसें मे मदनसहस्राणि कल्पयन्तीव ॥ ४ ॥

**बृहस्पतिः**—भो शङ्कर, वध्वा सहास्यां वेदिकाया प्राङ्मुखो वर्तेथाः ।

( शङ्कर. पार्वत्या सहोपविशति । )

**शङ्करः**—( आत्मगतम् )

नन्दितनयनचकोरा नवनवलावण्यकौमुदीविसरा ।
उत्कूलयति मनो मे जलधिं सैषा कलेव चान्द्रमसी ॥ ५ ॥

**बृहस्पतिः**—( अग्निमुपसमाधाय ) शङ्कर, त्वदीयेन पाणिना पार्वत्याः पाणिमवलम्बस्व । ( शङ्करस्तथा करोति । )

( पार्वती पुलकोद्भेदमभिनयति । )

**शङ्करः**—( आत्मगतम् )

आभाति वालिकेय पाणिस्पर्शेन पुलकितावयवा ।
अभिनववसन्तसङ्गादाविर्मुकुलेव वालचूतलता ॥ ६ ॥

**ब्रह्मा**—वधूवरौ पावकं प्रदक्षिणां कुरुताम् । ( उभौ तथा कुरुतः । )

( पार्वती शङ्करमवलोकयति । शङ्कर प्रत्यवलोकयति । पार्वती दृष्टिं परावर्तयति । )

**शङ्करः**—( आत्मगतम् )

अवलोकनाय लोला दृष्टिरियं मृगदृशो निवृत्तिमती ।
गत्वा प्रति प्रवाहं राजति शफरी निवर्तमानेव ॥ ७ ॥

( बृहस्पति पार्वत्या. पाणिना लाजाञ्जलिं कारयति । )

( पार्वती धूमाक्रमेण वैक्लव्य निरूपयति । )

**शङ्करः**—( आत्मगतम् )

प्रस्विन्नगण्डफलकच्युतपत्रलेखं
धूमानुषङ्गगलिताञ्जनपाटलाक्षम् ।
म्लायद्वसन्तकुसुमं मुखमायताक्ष्या-
श्चित्ते ममार्पयति कामपि रागमुद्राम् ॥ ८ ॥

**बृहस्पतिः**—शङ्कर, पार्वत्याः पादकमलं पाणिभ्यामस्मानमारोपयतु भवान् ।

( शङ्करः स्मयमानमुखस्तूष्णीं तिष्ठति । )

**कुलपर्वताः**—( ससम्भ्रमम् ) भगवन्, प्रमाणभूतेन पुरोधसा यदुच्यते तदनुष्ठीयताम् ।

**भूतगणाः**—( ससरम्भम् ) कुलपर्वताः, कथमिव नियम्यते त्रिभुवननियन्ता नीललोहितः ।

**ब्रह्मा**—( सस्मितमुभयान्निवार्य ) सकलजननियामिका स्वतः-प्रमाणभूता श्रुतिरेव सम्यगित्थमभिदधाति । तद्यथोक्तमनुष्ठीयताम् ।

( शङ्करः सकुचिताभ्यां पाणिभ्यां पार्वत्या पादकमलमस्मानमारोपयति । )

( बृहस्पतिः कर्मशेषं समापयन् वधूवरौ ब्रह्माणं प्रणमयति । )

**ब्रह्मा**—( हस्तमुद्यम्य )

सकलजगतां सवित्रोरनन्यसामान्यमस्तु वां प्रेम ।
भुवनभयभङ्गदक्षो भवतु कुमारोऽपि तारकध्वंसी ॥ ९ ॥

( इत्याशिषं प्रयुङ्क्ते । ) [ पार्वतीपरिणये ]

---

**प्रश्नाः**—नेपथ्ये केन प्रथमं श्लोकः पठ्यते ? कं कमुद्दिश्य स तद्वदति ? महेश्वरमायान्तं श्रुत्वा किं करोति हिमवान् ? किमर्थं शङ्करो वाहनादवरोहति ? किं करोति हिमवान् शङ्करं दृष्ट्वा ? कुत्रोपविष्टा देवा कुलपर्वताश्च ? किमर्थं कुलपर्वतैर्भूतगणैश्च कोलाहलः कृतः ? कथं च स प्रशमितो ब्रह्मणा ?

**वर्णनम्**—( १ ) परिणयविधौ ये केऽप्याचारा अनुष्ठीयन्ते तेषां क्रमशः सङ्क्षेपतश्च वर्णनं क्रियताम् । ( २ ) हिमवतः शङ्करस्य च स्वभाववर्णनं सङ्क्षेपेण कुरुत ।

**साधितानि विशेषणपदानि—**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| विवाहः | — | वैवाहिकी । | ——— | — | पाराणिकं । |
| | — | धार्मिकं । | महेन्द्रः | — | ——— । |
| स्वभावः | — | | | — | नसर्गिकी । |
| | — | चार्मणम् । | उर्वी | — | । |

**वृत्तम्**—अस्मिन् पाठे वर्तमानानां श्लोकानां चरणानि गणमात्राभिर्विभज्य सलक्षणं वृत्तानि कथयत ।

---

# सङ्कीर्णपद्यानि ।

**श्रीगणेशः**—क्रोडं तातस्य गच्छन् विशदबिसधिया शावकं शीतभानो-
राकर्षन् भालवैश्वानरनिशितशिखारोचिषा तप्यमानः ।
गङ्गाम्भः पातुमिच्छन् भुजगपतिफणाफूत्कृतैर्दूयमानो
मात्रा सम्बोध्य नीतो दुरितमपनयेद्बालवेषो गणेशः ॥ १ ॥

**सरस्वती**—ज्योतिस्तमोहरमलोचनगोचरं तद्
जिह्वादुरासदरस मधुनः प्रवाहम् ।
दूरे त्वचः पुलकबन्धि परं प्रपेदे
सारस्वतं किमपि कामदुहं रहस्यम् ॥ २ ॥

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना ।
या ब्रह्माच्युतशङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ॥ ३ ॥

**शिवः**—स पातु वो यस्य जटाकलापे स्थितः शशाङ्कः स्फुटहारगौरः ।
नीलोत्पलानामिव नालपुञ्जे निद्रायमाणः शरदीव हंसः ॥ ४ ॥

एकान्ते द्विसमस्त्रिलोचन इति ख्यातश्चतुर्भिः स्तुतो
वेदैः पञ्चमुखः षडाननपिता सप्तर्षिभिर्वन्दितः ।
अष्टाङ्गो नवतुल्य आमरगणे वासो दशाशा दधत्
स्वश्चैकादश सोऽवतान्न विजितो यो द्वादशात्मांशुभिः ॥ ५ ॥

मौलौ किं नु महेश मानिनि जल किं वक्त्रमम्भोरुह
किं नीलालकवेणिका मधुकरी किं भ्रूलता वीचिका ।

किं नेत्रे शफरौ किमु स्तनयुगं प्रेङ्खद्रथाङ्गद्वंय
साशङ्कामिति वञ्चयन् गिरिसुता गङ्गाधरः पांतु वः ॥ ६ ॥

धन्या केय स्थिता ते शिरसि शशिकला किं नु नामैतदस्या
नामैवास्यास्तदेतत् परिचितमपि ते विस्मृतं कस्य हेतोः ।
नारीं पृच्छामि नेन्दुं कथयतु विजया न प्रमाण यदीन्दुः
देव्या निह्नोतुमिच्छोरिति सुरसरितं शाठ्यमव्याद्विभोर्वः ॥ ७ ॥

कस्त्वं शूली मृगय भियज नीलकण्ठः प्रियेऽह
केकामेका कुरु पशुपतिर्नैव दृश्ये विषाणे ।
स्थाणुर्मुग्धे न वदति तरुर्जीवितेश· शिवाया
गच्छाटव्यामिति गिरिजया निर्जितश्चन्द्रचूडः ॥ ८ ॥

**गङ्गा**—यन्नाम्नः प्रथमाक्षरं विजयते भानौ, द्वितीयाक्षरं
नित्यं नृत्यति सत्कवीन्द्रवदने, भूत्वान्त्यवर्णद्वयम् ।
रामो रावणमाजघान समरे, शम्भोः शिरःशालिनी
सा सर्वाक्षरमालिनी भवतु मे भाग्याय भागीरथी ॥ ९ ॥

**विष्णुः**—वक्षःस्थली रक्षतु सा जगन्ति जगत्प्रसूतेर्गरुडध्वजस्य ।
श्रियोऽङ्गरागेण विभाव्यते या सौभाग्यहेम्नः कषपट्टिकेव ॥ १० ॥

वृन्दारका यस्य भवन्ति भृङ्गा मन्दाकिनी यन्मकरन्दबिन्दुः ।
तद्वारविन्दारपदारविन्द वन्दे चतुर्वर्गचतुष्पदं तत् ॥ ११ ॥

येनोत्थाप्य समूलमन्दरगिरिश्छत्रीकृतो गोकुले
राहुर्येन महाबलः सुरिपुः कार्याद्दशेपीकृतः ।
कृत्वा त्रीणि पदानि येन वसुधा बद्धो बलिर्लीलया
सोऽयं पातु युगे युगे युगपतिस्त्रैलोक्यनाथो हरिः ॥ १२ ॥

**रामः**—राज्यं येन पटान्तलग्नतृणवत्त्यक्त गुरोराज्ञया

पाथेयं परिगृह्य कार्मुकवरं घोरं वनं प्रस्थितः ।
स्वाधीनः शशिमौलिचापविषये प्राप्तो न वै विक्रियां
पायाद्वः स विभीषणाग्रजनिहा रामाभिधानो हरिः ॥ १३ ॥
कल्याणानां निधानं कलिमलमथन पावनं पावनानां
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य ।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनाना
वीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम ॥ १४ ॥

**कृष्णः**—कस्तूरीतिलकं ललाटपटले वक्षःस्थले कौस्तुभं
नासाग्रे नवमौक्तिक करतले वेणुः करे कङ्कणम् ।
सर्वाङ्गे हरिचन्दन सुविमल कण्ठे च मुक्तावलिं
विभ्रद्गोपवरैः समं विजयते गोपालचूडामणिः ॥ १५ ॥

## लक्ष्मीपार्वतीसंवादः

भिक्षुः कास्ति बलेर्मखे पशुपतिः किं नास्त्यसौ गोकुले
मुग्धे पन्नगभूषणः सखि सदा शेते च तस्योपरि ।
आर्ये मुञ्च विषादमाशु कमले नाहं प्रकृत्या चला
चेत्थ वै गिरिजासमुद्रसुतयोः सम्भाषणं पातु वः ॥ १६ ॥

**सूर्यान्योक्तयः**—खद्योतो द्योतते तावद् यावन्नोदयते शशी ।
उदिते तु सहस्रांशौ न खद्योतो न चन्द्रमाः ॥ १७ ॥
अजस्र लसत्पद्मिनीवृन्दसङ्गं मधूनि प्रकाम पिबन्तं मिलिन्दम् ।
रविर्मोचयत्यञ्जकारागृहेभ्यो दयालुर्हि नो दुष्टवद्दोषदर्शी ॥ १८ ॥
पततु नभसो गच्छत्वस्तं निमज्जतु वारिधौ
व्रजतु वरुणागारद्वारं प्रभाभिरनादृतः ।
तदपि तरणिर्दत्वा पादं शिरस्सु महीभृतां

दलिततिमिरव्रातः प्रातः पुनः सकृदेष्यति ॥ १९ ॥
दूरं यान्तु निशाचराः शशिकराः क्लेशं लभन्तान्तरा-
मुद्योत कलयन्तु हन्त न चिरं खद्योतका द्योतले ।
ध्वान्त ध्वसमुपैतु हसनिवहः पद्माकरे शाम्यतु
प्राचीपर्वतमौलिमण्डनमणि. सूर्यः समुज्जृम्भते ॥ २० ॥

**चन्द्रान्योक्तयः**—क्षीणः क्षीणः समीपत्वं पूर्णः पूर्णोऽतिदूरताम् ।
उपैति मित्राद्यचन्द्रो युक्तं तन्मलिनात्मनः ॥ २१ ॥
वक्रोऽस्तु बाल्ये तदनु प्रवृद्धः कलङ्कवानस्तु जडोऽस्तु चन्द्रः ।
महेशमौलौ च पद दधातु जायेत वन्द्यो विविधोपकारात् ॥ २२ ॥

जन्म क्षीरमहार्णवे सहभुवः श्रीपारिजाताद्यो
बिम्ब यस्य सुधामय त्रिभुवनाधीशस्य मूर्ध्नि स्थितम् ।
इत्य सर्वचराचरप्रियकरो यस्योदये चेद्भवेत्
सङ्कोचः कमलस्य दुष्कृतिरसौ निन्द्यो न ताराधिपः ॥ २३ ॥

**मेघान्योक्तिः**—गर्जन्नम्बु ददाति तच्च कणिकारूपेण यत्र क्वचिद्
वर्षाकालमपेक्ष्य दानसमये काण्यं विधत्ते मुखे ।
पश्चात्पाण्डुरतामयेति लघुतामप्येनि भूतस्ततः
श्रीमद्रामनृपालशेखरविभो दाता कियान् वारिदः ॥ २४ ॥

**सागरान्योक्तिः**—स्वस्त्यस्तु विद्रुमवनाय नमो मणिभ्यः
कल्याणिनी भवतु मौक्तिकशुक्तिमाला ।
प्राप्त मया सकलमेव फल पयोधे
यद्दारुणैर्जलचरैर्न विदारितोऽस्मि ॥ २५ ॥

**सिंहान्योक्तिः**—गम्यते यदि मृगेन्द्रमन्दिरे लभ्यते करिकपोलमौक्तिकम् ।
जम्बुकालयगतेन लभ्यते वत्स पुच्छखुरचर्मखण्डनम् ॥ २६ ॥

एणः क्रीडति शूकरश्च खनति द्वीपी च गर्व्वायते
क्रोष्टा क्रन्दति वल्गते च शशको वेगाद्वुरुर्धावति ।
निःशङ्कः करिपोतकस्तरुलतामुन्मोटते लीलया
हंहो सिंह विना त्वयांद्य विपिने कीदृग्दशा वर्तते ॥ २७ ॥

**गजान्योक्तिः**—पीत यत्र हिमं पयः कवलिता यस्मिन् मृणालाङ्कुरा-
स्तापार्तेन निमज्ज्य यत्र सरसो मध्ये विमुक्तः श्रमः ।
धिक् तस्यैव जलानि पङ्किलयतः पाथोजिनीं मश्नतो
मूलान्युत्खनतः करीन्द्र भवतो लज्जापि नो जायते ॥ २८ ॥

**वृक्षान्योक्तिः**—छायाभिः प्रथम ततस्तु कुसुमैः पश्चात्फलैः स्वादुभिः
प्रीणात्येव तरुः पथीति पथिकैः श्रान्तैः सुख स्थीयते ।
को जानाति यदत्र कोटरगतः प्रत्यग्रहालाहल—
ज्वालाजालकरालवक्त्रकुहरः कृष्णः फणी वर्तते ॥ २९ ॥

**कविकाव्यप्रशंसा**—ते वन्द्यास्ते महात्मानस्तेषां लोके स्थिरं यशः ।
यैर्निबद्धानि काव्यानि ये वा काव्येषु कीर्तिताः ॥ ३० ॥
ख्याता नराधिपतयः कविसंश्रयेण
राजाश्रयेण च गताः कवयः प्रसिद्धिम् ।
राज्ञा समोऽस्ति न कवेः परमोपकारी
राज्ञो न चास्ति कविना सदृशः सहायः ॥ ३१ ॥

चेतःप्रसादजनन विबुधोत्तमाना-
मानन्दि सर्वरसयुक्तमतिप्रसन्नम् ।
काव्यं खलस्य न करोति हृदि प्रतिष्ठां
पीयूषपानमिव वक्त्रविवर्ति राहोः ॥ ३२ ॥
हे राजानस्त्यजत सुकविप्रेमबन्धे विरोधं

शुद्धा कीर्तिः स्फुरति भवतां नूनमेतत्प्रसादात् ।
तुष्टैर्बद्ध तदलघु रघुस्वामिनः सच्चरित्रं
रुष्टैर्नीतस्त्रिभुवनजयी हास्यमार्गं दशास्यः ॥ ३३ ॥
प्रयच्छति चमत्कृतिं विरचनाविधौ चेतसः
सभासु पठितो भवत्यसमसाधुवादास्पदे ।
प्रथामुपगतस्तनोत्यतितरामुदारं यशो
न पुष्यति मनोरथं कमिव काव्यचिन्तामणिः ॥ ३४ ॥

**सज्जनप्रशंसा**—जयन्ति जितमत्सराः परहितार्थमभ्युद्यता·
पराभ्युदयसुस्थिताः परविपत्तिखेदाकुलाः ।
महापुरुषसत्कथाश्रवणजातकौतूहलाः
समस्तदुरितार्णवप्रकटसेतवः साधवः ॥ ३५ ॥
स्पृहणीयाः कस्य न ते सुमतेः सरलाशया महात्मानः ।
त्रयमपि येषा सदृशा हृदय वचन तथाचारः ॥ ३६ ॥
आदिमध्यनिधनेषु सौहृदं सज्जने भवति नेतरे जने ।
छेदताडननिघर्षतापनैर्नान्यभावमुपयाति काञ्चनम् ॥ ३७ ॥
तृणानि नोन्मूलयति प्रभञ्जनो मृदूनि नीचैः प्रणतानि सर्वशः ।
समुच्छ्रितानेव तरून् प्रबाधते महान् महत्स्वेव करोति विक्रमम् ॥ ३८ ॥
पात्रं पवित्रयति नैव गुणान् क्षिणोति
स्नेहं न संहरति नापि मलं प्रसूते ।
दोषावसानरुचिरश्चलतां न धत्ते
सत्सङ्गमः सुकृतसद्मनि कोऽपि दीपः ॥ ३९ ॥

**खलनिन्दा**—शमयति यशः क्लेशं सूते दिशत्यशिवां गतिं
जनयति जनोद्वेगायासं नयत्युपहास्यताम् ।

भ्रमयति मतिं मानं हन्ति क्षिणोति च जीवितं
क्षिपति सकलं कैल्याणानां कुल खलसङ्गमः ॥ ४० ॥
पात्रमपात्रीकुरुते दहति गुणान् स्नेहमाशु नाशयति ।
अमले मलं प्रयच्छति दीपज्वालेव खलमैत्री ॥ ४१ ॥

**सामान्यनीतिः**—लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्
पिबेच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपासार्दितः ।
कदाचिदपि पर्यटञ्छशविषाणमासादये-
न्नतु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥ ४२ ॥
वन्द्यान्निन्दति दुःखितानुपहसत्याबाधते बान्धवान्
शूरान् द्वेष्टि धनच्युतान् परिभवत्याज्ञापयत्याश्रितान् ।
गुह्यानि प्रकटीकरोति घटयन् यत्नेन वैराशयं
ब्रूते शीघ्रमवाच्यमुज्झति गुणान् गृह्णाति दोषान् खलः ॥ ४३ ॥
विनाप्यर्थैर्धीरः स्पृशति बहुमानोन्नतिपदं
परिप्वक्तोऽप्यर्थैः परिभवपदं याति कृपणः ।
स्वभावेनोद्भूतां गुणसमुदयावासिविपुलां
द्युतिं सैंहीं न श्वा धृतकनकमालोऽपि लभते ॥ ४४ ॥
तेजस्विनि क्षमोपेते नातिकार्कश्यमाचरेत् ।
अतिनिर्मथनाद्वह्निश्चन्दनादपि जायते ॥ ४५ ॥
गुणेषु यत्नः क्रियतां किमाटोपैः प्रयोजनम् ।
विक्रीयन्ते न घण्टाभिर्गावः क्षीरविवर्जिताः ॥ ४६ ॥
गच्छन् पिपीलिको याति योजनानां शतान्यपि ।
अगच्छन् वैनतेयोऽपि पदमेक न गच्छति ॥ ४७ ॥
चिन्तनीया हि विपदामादावेव प्रतिक्रिया ।

न कूपखनन युक्त प्रदीप्ते वह्निना गृहे ॥ ४८ ॥
व्रजत्यधोऽधो यात्युच्चैर्नरः स्वैरेव कर्मभि· ।
खनितेव हि कूपस्य प्रासादस्येव कारकः ॥ ४९ ॥

यस्य जना न वदन्ति महत्त्वं नो समरे मरण विजय वा ।
न श्रुतदानमहाधनता वा तस्य भवः कृमिकीटसमानः ॥ ५० ॥
सर्वथा स्वहितमाचरणीय किं करिष्यति जनो वहुजल्पः ।
विद्यते न हि स कश्चिदुपायः सर्वलोकपरितोषकरो यः ॥ ५१ ॥
उत्साहसम्पन्नमदीर्घसूत्रं क्रियाविधिज्ञ व्यसनेष्वसक्तम् ।
शूरं कृतज्ञं दृढनिश्चय च लक्ष्मीः स्वय वाञ्छति वासहेतोः ॥ ५२ ॥
जितेन्द्रियत्वं विनयस्य कारणं गुणप्रकर्षो विनयादवाप्यते ।
गुणाधिके पुसि जनोऽनुरज्यते जनानुरागप्रभवा हि सम्पदः ॥ ५३ ॥
प्राणानां परिरक्षणाय सतत सर्वाः क्रियाः प्राणिना
प्राणेभ्योऽभ्यधिक समस्तजगतां नास्त्येव किञ्चित् प्रियम् ।
पुण्य तस्य न शक्यते गणयितु य. पूर्णकारुण्यवान्
प्राणानामभय ददाति सुकृती तेपामहिंसाव्रतम् ॥ ५४ ॥
याचमानजनमानसवृत्तेः पूरणाय वत जन्म न यस्य ।
तेन भूमिरतिभारवतीयं न द्रुमैर्न गिरिभिर्न समुद्रैः ॥ ५५ ॥
लघीयः प्राज्य वा फलमभिमतं प्राप्तुमनसा
निरीहेण स्थातु, क्षणमपि न युक्त मतिमता ।
कुलालो दण्डेन भ्रमयति न चेच्चक्रमनिश
शरावः कुम्भो वा न हि भवति सत्यामपि मृदि ॥ ५६ ॥
क्वचिद् भूमौ शायी क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनः
क्वचिच्छाकाहारी क्वचिदपि च मासोदनरुचिः ।

क्वचित् कन्थाधारी क्वचिदपि विचित्राम्बरधरो
मनस्वी कार्यार्थी गणयति न दुःख न च सुखम् ॥ ५७ ॥
जनस्थाने भ्रान्त कनकमृगतृष्णान्वितधिया
वचो वैदेहीति प्रतिपदमुदश्रु प्रलपितम् ।
कृतालङ्काभर्तुर्वदनपरिपाटीषु घटना
मयासं रामत्वं कुशलवसुता न त्वधिगता ॥ ५८ ॥
अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वापि विषया
वियोगे को भेदस्त्यजति न जनो यत् स्वयममून् ।
व्रजन्तः स्वातन्त्र्यादतुलपरितापाय मनसः
स्वयं त्यक्ता ह्येते शमसुखमनन्त विदधति ॥ ५९ ॥
भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्तास्तपो न तप्त वयमेव तप्ताः ।
कालो न यातो वयमेव यातास्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ॥ ६० ॥
अहितहितविचारशून्यबुद्धेः श्रुतिसमयैर्बहुभिर्बहिष्कृतस्य ।
उदरभरणमात्रकेवलेच्छोः पुरुषपशोश्च पशोश्च को विशेषः ॥ ६१ ॥
मातेव रक्षति पितेव हिते नियुङ्क्ते
कान्तेव चाभिरमयत्यपनीय दुःखम् ।
कीर्तिं च दिक्षु वितनोति तनोति लक्ष्मीं
किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या ॥ ६२ ॥
ह्यर्थिभ्यः प्रतिपाद्यमानमनिशं वृद्धिं परां गच्छति ।
कल्पान्तेष्वपि न प्रयाति निधन विद्याख्यमन्तर्धनं
येषां तान् प्रति मानमुज्झत नृपाः कस्तैः सह स्पर्धते ॥ ६३ ॥
त्व राजा वयमप्युपासितगुरुप्रज्ञाभिमानोन्नताः

ख्यातस्त्व विभवैर्यशासि कवयो दिक्षु प्रनन्वन्ति न· ।
इत्थ मानद नातिदूरमुभयोरस्यावयोरन्तरं
यद्यस्मासु पराङ्मुखोऽसि वयमप्येकान्ततो निस्पृहाः ॥ ६४ ॥

अहमेव गुरु सुदारुणानामिति हालाहल मा स्म नात दृप्य ।
ननु सन्ति भवादृशानि भूयो भुवनेऽस्मिन् वचनानि दुर्जनानाम् ॥ ६५ ॥

क्षते प्रहारा निपतन्त्यभीक्ष्ण धनक्षये वर्धति जाठराग्नि· ।
आपत्सु वैराणि समुद्भवन्ति छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति ॥ ६६ ॥

गङ्गेवाघविनाशिनी जनमन सन्तोषवच्चन्द्रिका
तीक्ष्णाशोरपि सत्प्रभेव जगदज्ञानान्धकाररापहा ।
छायेवाखिलतापनाशनकरी स्वर्धेनुवत्कामदा
पुण्यैरेव हि लभ्यते सुकृतिभि. सत्सङ्गनिर्दुर्लभा ॥ ६७ ॥

किं क्वापि प्रलयानलैर्विटपिनो निर्दह्य भस्मीकृता ।
किंस्विद्दैवगजेन पङ्कजवन निष्कन्दमुन्मूलितम् ।
किं वा हन्त कृतान्तकेसरिभयात् त्यक्तो मदः कुञ्जरै—
र्येनास्मिन् विरसे करीरकुसुमे हा भृङ्ग विश्राम्यसि ॥ ६८ ॥

इहानेके सत्य सततमुपकारिण्युपकृतिं
कृतज्ञाः कुर्वन्तो जगति निवसन्त्येव सुधियः ।
कियन्तस्ते सन्त· सुकृतपरिपाकप्रणयिनो
विना स्वार्थं येषा भवति परकृत्यव्यसनिता ॥ ६९ ॥

आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरङ्गाकुला
रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्यद्रुमध्वसिनी ।
मोहावर्तसुदुस्तरा प्रकटितप्रोत्तुङ्गचिन्तातटी
तस्या. पारगता विशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वराः ॥ ७० ॥

प्रथमवयसि पीतं तोयमल्पं स्मरन्तः
शिरसि निहितभौरा नारिकेला नराणाम् ।
उदकममृतकल्पं दद्युराजीवितान्त
न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति ॥ ७१ ॥

दोषाकरोऽपि कुटिलोऽपि कलङ्कितोऽपि
मित्रावसानसमये विहितोदयोऽपि ।
चन्द्रस्तथापि हरवल्लभतामुपैति
नैवाश्रितेषु महता गुणदोषशङ्का ॥ ७२ ॥

गाङ्गमम्बु सितमम्बु यामुनं कज्जलाभमुभयत्र मज्जतः ।
राजहंस तव सैव शुभ्रता क्षीयते न च न चापचीयते ॥ ७३ ॥

धवळयति समग्रं चन्द्रमा जीवलोक
किमिति निजकलङ्कं नात्मसंस्थ प्रमार्ष्टि ।
भवति विदितमेतत् प्रायशः सज्जनानां
परहितनिरतानामादरो नात्मकार्ये ॥ ७४ ॥

केनादिष्टौ कमलकुमुदोन्मीलने पुष्पवन्तौ
विश्व तोयैः स्नपयितुमसौ केन वा वारिवाहः ।
विश्वानन्दोपचयचतुरो दुर्जनानां दुरापः ।
श्लाघ्यो लोके जयति महतामुज्ज्वलोऽय निसर्गः ॥ ७५ ॥

## प्रथमः पाठः ।

१ अरविन्ददलायताक्षम्—अरविन्दस्य ( कमलस्य ) दले ( पर्णे ) इव आयते अक्षिणी ( नेत्रे ) यस्य स , तम् । ( ष व ) कुन्देन्दुशङ्खदशनम्—कुन्दश्च इन्दुश्च शङ्खश्च तद्वद् दशना यस्य तम् । ( ष व ) इन्द्रादिदेवगणवन्दितपाद-पीठम्—इन्द्र आदि येषा ते, इन्द्रादयश्च ते देवा , तेषा गण·, तेन वन्दितं पादपीठ (foot-stool) यस्य स , तम् । ( ष व ) वृन्दावनमेव आलयः ( गृह ) यस्य स , तम् । ( ष व ) एतादृश वसुदेवसूनुमहं वन्दे इत्यर्थ ।

२ वृष्णिवशप्रदीप —वृष्णीना ( यादवाना ) वशस्य प्रदीप इव प्रदीप । ( ष त ) मेघश्यामल —मेघ इव श्यामल ( नीलवर्ण । ) ( क )

३ एकान्तम्—निश्चितम् । इयन्तम्—एतावन्तम् ( this much ) अविस्मृति —न विस्मृति —सततस्मरणम् । भवे भवे—जन्मनि जन्मनि, प्रतिजन्म ।

४ मधुन —मद्यस्य, मकरन्दस्य वा । अपायिन —न पिवन्ति ते ।

५ नरकान्तक—नरकस्य ( नरकासुरस्य ) अन्तक ( विनाशक ), तत्स-म्बुद्धि । ( ष त ) अवधीरितशारदारविन्दौ—शरदि ( शरदृतौ ) भव शारदम्, शारदे च ते अरविन्दे च । अवधीरिते ( तिरस्कृते ) शारदारविन्दे याभ्या तौ चरणौ । ( तृ ब )

६. मुरभिदि—मुर ( मुरदैत्य ) भिनत्ति ( हन्ति ) इति मुरभिद् ( कृष्ण. ) तस्मिन् । ( उ त ) जातु—कदाचिदपि ।

७ मा भै.—मा भैषी , न भेतव्यम् । ( अनुचितोऽय प्रयोग । ) यामी·—यमसम्बन्धिन्य ( मरणकालिका. । ) ध्यायस्वेत्यार्ष. प्रयोग । व्यसनापनोदनकरः—व्यसनाना ( सङ्कटानां ) अपनोदनम् ( दूरीकरणम् ) करोति इति व्यसनापनोदनकर·, श्रीधरः । ( उ त. )

८ कातरत्वम्—भीरुत्वम् । एका—केवला, असहाया ।

९. आनन्द—आनन्दस्वरूपिन् । निरामय—निर्गत. आमय.—( व्याधि. ) यस्य व्यधिशून्य ।

१० क्षीरसागरः ( दुग्धसमुद्रः ) तस्य तरङ्गाना ये शीकरा., तेषा आसार. ( वृष्टि ) तेन तारकिता ( तारकासदृशै· जलबिन्दुभि पूर्णा ) अत एव चार्वी मूर्ति· यस्य स तस्मै । ( प व ) ( श्रीकृष्णस्य शरीरमाकाशवन्नील तस्मिंश्च तारका-वत् क्षीरसागरस्य शीकरा आसन् । ) भोगी ( शेष ) तस्य भोग ( शरीर )

स एव शयनीयं ( bed ), तस्मिन् य शेते तस्मै। ( उ त ) मधुविद्विषे-मधु ( मधुदैत्य ) विद्वेष्टीति मधुविद्विट्, तस्मै। ( उ त )

## द्वितीयः पाठः।

मानसे ( मानससरसि ) निवासिनाम्। सञ्जता' ( उत्पन्ना ) ईर्षा यस्य स। ( प व ) प्रफुल्लानि कह्लाराणि ( कमलानि ) तैः भासुरं कान्तिमत्, तेषु। ( तृ त ) हिमा अंशवः ( किरणा. ) यस्य सः ( चन्द्र· ), तस्य खण्ड ( विभाग ) तद्वत् धवलानि ( श्वेतानि। ) ( क ) मृणालानि—कमलस्य तन्तव। हंसाना राजा राजहंसः तस्य भाव राजहंसता ताम्। ( प त ) धूर्ताना शिरोमणि· ( श्रेष्ट। ) ( प त ) रोषमिवाभिनयन्—क्रुद्ध इति आत्मान दर्शयन्। अपरीक्ष्यवादिनः—अपरीक्ष्य वदन्ति ते। अभिधाय—उक्त्वा। उपजहार—अयच्छत्। वकहृतक—हृतकशब्दः 'दुष्ट' ( कुत्सित ) इत्यर्थे उपयुज्यते। विपरिवर्तते—अन्यथा भवति। ( is changed )

## तृतीयः पाठः।

आत्मना ( स्वय, स्वकर्मणा ) वञ्चित, तस्य। ( तृ. त ) जीवितात् ( प्राणेभ्य ) निर्विशेषौ। ( प त )—( as dear as life ) अस्तमनकाल—अस्तकाल। मद्धेतो—मम कृते। केवल स्मर्तव्योऽह प्रियजनकथासु—यदा स्निग्धजनकथा भवेयुस्तदा केवलमह स्मरणीय इति भाव·। कोटिभागयो.—अग्रयो। मौनमेव व्रत ( नियम. ) यस्य स, तेन। ( प व. ) मिथ· सवदताम्—परस्पर अन्योऽन्य वा प्रति सम्भाषमाणानाम्।

## चतुर्थः पाठः।

१. प्राञ्जलि.—हस्तौ ( करसम्पुटौ ) मिलित्वा।

२ तेषा महर्षीणा शुश्रूषण कुर्वती अह समुपस्थिता आसमित्यन्वय.।

३ ते ( गुरव. ) ब्रह्मण पद गता.—मोक्षपद प्राप्ता। समाहिता—(attentive to duty ) स्वकर्तव्यपरायणा।

६. कलेवरम्—शरीरम्।

८. मनोवागगोचर.—मनसो वाचश्च अगोचर। ( प त. ) ( ज्ञातुमशक्य। )

११. त्वामुपस्थितः—तव सन्निधिं प्राप्त।

१२. सुदुर्लभम् सुतरा दुःखेन लब्धु शक्य सुदुर्लभ तम्। ( क. )

## पञ्चमः पाठः ।

टिट्टिभ –टिटवी– इति महाराष्ट्रभाषायाम् । पुलिनम्–समुद्रतीरवर्ती वालुका-प्रदेशः । वेला–tide का मात्रा नाम समुद्रस्य मम पुरत.–प्रागुक्तस्य वाक्यार्थ-स्यैव पुनरुक्तिरत्र वर्तते । नवा. नद्य. । नवनदीना शतानि ( असख्येयानि । ) पक्षिकीटकस्य–क्षुद्रपक्षिण· । जायाच पतिश्च दपती तयो· । (द्व ) प्रमाणम्–अस्य वलस्य प्रमाणम्, कियद्वा अस्य वलमिति । लोहसन्निभया–लोहसदृशाया । विग्रह –वैरम् । असाराणाम्–अल्पवलानाम् । समवाय –मेलनम्, समूह. । वैनतेय.–विनताया अपत्य वैनतेय ( गरुड । ) परिभव –अवमान, पराजय· । सन्धाय– ( धनुषि इति अध्याहारः । ) स्थलता त्वा नेष्यामि–सर्वमपि जल शोषयिष्यामि ।

## षष्ठः पाठः ।

अवसन्नायाम्–गतप्रायायाम । अस्ताचलचूडावलम्विनि–अस्ताचलस्य ( पश्चिम-पर्वतस्य ) चूडा ( शिखर ) अवलम्वते स., तस्मिन् । ( उ त ) कुमुदिनी-नायके–कुमुदिनीना नायक, तस्मिन् । ( ष त ) कपोताना राजा––कपोतराज । ( ष त. ) हातव्या·––त्यक्तव्या । तन्द्रा––drowsiness. चक्षुर्विषयातिक्रान्तेषु–अगोचरीभूतेषु, अदृश्यमानेषु । प्रत्यभिज्ञाय–सस्मरणपूर्वक ज्ञात्वा । कुत्सितस्य पुरुषस्य लक्षण (चिह्नम् । ) ( क ) प्रहृष्टमना.–प्रहृष्ट मन यस्य स. । ( ष व ) अस्मान् अश्रिता. अस्मदाश्रिताः तेषाम् । ( द्वि त. ) पुलकितः–पुलका. ( रोमाञ्चा ) सञ्जाताः अस्य । ( त बृ. ) आमन्त्र्य–आपृच्छ्य । ( having taken leave. )

## सप्तमः पाठः ।

१ उटजे–आश्रमे । शरदः व्यपाय –( निर्गमनम् । ) ( ष त )

२ शर्वरी–रात्रि ।

३ प्रह्व –सुशील, विनयान्वित. ।

५ नीहारे ( fog, frost ) परुष ( कठोरः ) । सस्याना ( crops ) माला. सन्त्यस्यामिति सस्यमालिनी । ( त बृ. ) । अनुपभोग्यानि–अतिशीतत्वात् सेवितुमयोग्यानि ।

६ प्राज्या· ( प्रभूताः ) कामा. ( इच्छा ) येषा ते । ( ष. व. ) विजि-गीषव.–विजेतुमिच्छवः ।

७. अन्तकेन ( यमेन ) सेविताम् । ( तृ त. ) दिगं—दक्षिणा दिगम् । तदा उत्तरा दिक् सूर्यहीनत्वात् विरहिणीव भाति ।

८. हिमस्य कोपेण आढ्यः ( सम्पन्न । ) ( तृ त ) हिमगिरि· उत्तरस्या दिशि स्थित । तस्मात् दक्षिणायनकाले हिमगिरि दूरसूर्य ( दूरे सूर्यः यस्मात् स ) ( प व ) भवति ।

९. सुभगा —सुखकरा । छाया च सलिल च गैत्यात् दुर्भग ( दुःखद ) भवति हेमन्तकाले ।

१० पटु—तीव्रम् । शून्यानि अरण्यानि ( तरुपल्लवाना जीर्णत्वात् ) येषु ते । ( स त )

११. हेमन्ते पुष्यनीता. ( पुष्येण नक्षत्रेण नीता.—तदवलम्बिन्य इत्यर्थ । ) त्रियामा ( रात्रय ) दीर्घतराः शीताश्च भवन्ति ।

१२ रवि प्रति सक्रान्त ( गतं ) सौभाग्य ( तेज , शोभा ) यस्य स । ( प व ) नि श्वासान्ध —श्वासवाष्पेण आदर्शो मलिनो भवति । तेन च प्रतिबिम्ब दर्शयितुं अक्षमो भवति इति प्रसिद्धम् ।

१३ ज्योत्स्ना—चन्द्रप्रकाश । ( हिम ) तुषारै. मलिना । वनेषु अटनकाले आतपेन सीता श्यामला बभूव । तथैव ज्योत्स्नापि हेमन्ते दृश्यते ।

१४ हिमेन ( शीतत्वेन ) वृद्ध· द्विगुणीकृत. पश्चिमदिग्वायु. शीततर वाति ।

१५ वाष्पम—हिमबिन्दव·, नीहार । यवगोधूमादीनि सस्यानि यत्र सन्ति तान्यरण्यानि । ( त बृ )

१६. कनकप्रभा ( पीतवर्णा·, पक्वत्वात् ) शाल्य ( शिरसि तण्डुलाना सम्पुटभारेण ) किंचित् आलम्बा ( वकीभूता· ) शोभन्ते ।

१७ अवश्याय —नीहार· तेन प्रक्लिन्नानि ( आर्द्रानि ) शाद्वलानि ( तृणानि ) यस्या. सा वनभूमि । ( प च )

१८ गजः तृषित अपि शुण्डादण्डेन जल स्पृशन् शीतत्वमनुभूय जलमपीत्वैव शुण्डामाकर्षति ।

१९. न गाहन्ते—अत्यन्तशीतत्वात् । अप्रगल्भा —भीरव. । आहव —युद्धम् ।

२० Difference between अवश्याय ( dew ) and नीहार ( mist ).

२१. सरिता जल बाष्पेण आवृतम् । तेन तत्रवर्तिना सारसाना रुतेन

( आरावेण ) एव तस्य अनुमान क्रियते । सरिता तीरे वालुकाप्रदेश. हिमपातेन आर्द्रीभूत. । एतादृश्य सरित. सम्प्रति दृश्यन्ते ।

२२ अग ( पर्वतः ) तस्य अग्रम् तत्र स्थितम् ( स त ) ( गिरिशिखर-वर्ति जलम् इत्यर्थ. । )

२३ हेमन्ते कमलाना सर्वथा नाश समुत्पद्यते । पत्राणि जीर्णानि, केसरकर्णिकादि शीर्ण ध्वस्त नष्ट च । तेन केवल नाल ( मूलदण्ड ) एव दृश्यते ।

## अष्टमः पाठः ।

विग्रहः—कलहः । कमलमयः पर्यङ्क ( मञ्च । ) राज्ञा चक्र ( समूह. ) तत् वर्तयते इति वर्ती । ( कृ वृ ) मरुस्थले—निर्जलभूमौ । अधिक्षिपसि—निन्दसि । एकान्तत.—सर्वथा । अर्थ—वस्तु । राज्य किम्—राज्यशासनस्य न किमपि महत्त्वमित्यर्थ । अवधीयताम्—सावधान श्रूयताम् । सर्वेषा ( षट् ) शास्त्राणा ( चतुर्णा—धर्म., अर्थ , काम , मोक्ष ) अर्थानां च पार गच्छतीति । ( कृ वृ ) दूतस्य कर्म दौत्यम् तेन—दूतकर्मणा । निदानम्—कारणम् । अनुसन्धीयताम्—क्रियताम् ।

## नवमः पाठः ।

व्यस्यते ( विक्षिप्यते चित्त ) अनेन, तद् व्यसनम्, तस्मात् विमोक्षः । ( प त ) सरूढदुर्जनसंसर्ग—संरूढ ( वृद्धिं प्राप्त ) दुर्जनाना ससर्ग. यस्य स । ( ष ब ) समुपाचिनोत्—अवर्धत । अभ्यभूयत—पराभूत , रोगाक्रान्तोऽभवदित्यर्थ. । एकान्तत.—निश्चयेन । विरागम्—dislike अतिभूमिं—अतिक्रातो भूमिम् अतिभूमि । ( द्वि त. ) गतम्—सवृद्धम् । चिकित्सितुम्—रोगस्य निदान कर्तुं त निवारयितु च । श्रेष्ठिन्—वैश्यवर । एकवृद्धया—एकया वर्धते इति, तया । (increasing by one) अपरिवर्त्य—नान्यथा कृत्वा । ( without changing ) जन्हास—न्हासं ( न्यूनत्वं ) जगाम । नीरन्ध्रितम्—सजातं नीरन्ध्र ( अवकाशाभाव ) यस्मिन् तत् । ( filled up ) ( "तारकादिभ्य इतच् ।" ) क्रियायोगो निदानपरिवर्जनम्—उपशमव्यापार तथा कर्तव्य. येन निदानस्य ( कारणस्य ) परिवर्जन ( नाश ) भवेत् इति । हाप्यमानम्—त्याज्यमानम् ।

## दशमः पाठः ।

१ बुभुत्सु—बोद्धुमिच्छु· । 'पुरैकदा ब्रह्मविष्णुशिवेषु देवेषु क· सर्वोत्तम इति जिज्ञासया महर्षिभिरभ्यर्थितो भृगुर्महत्त्व ज्ञातु भगवन्त विष्णु वक्षसि पदा ताडयामास । ततो भगवान् विष्णुस्त्याय 'सादर त बभाषे । किमर्थ कमलोदरकोमलेन पादेन पाषाणवद् दृढ मे वक्षोऽभिहत्य स्वात्मा व्याकुलित ? देहि मदङ्घे तमिति मुहुर्मुहुस्त प्रार्थयामास । तत्तादृशीं शिवब्रह्मणोरसुलभा तस्य क्षमा निरूप्य महर्षिर्भृगुर्मुदमियाय मेने चायमेव त्रिषु देवेषु महत्तम ' इति कथात्रानुसन्धेया ।

२ विभीषणेन सम्यगुपदिष्टो रावणस्त वाग्भि. सन्तप्य स्वनगरान्नि सारयामास । नत. स रामानुकूलो भूत्वा रावणनाश चकार ।

३ हृतराज्यदर्पसारम्—हृत ( पाण्डवेभ्य हृत ) राज्यं येन स ( तृ व ) दर्प ( अभिमान. ) एव सार यस्य स ( ष व ) हृतराज्यश्च असौ दर्पसारश्च तम् । ( क ) प्रोषु—( प्र+वस् ) अवसन् । समय —काल ।

४ वनान्तात्—वनमध्यात् । 'खल करोति दुर्वृत्त नून फलति नाधुषु । दशाननोऽहरत् सीता बन्धनं च महोदधे ॥' इति सुभाषितम् ।

५ शतयोजनततम्—शत योजनाना शतयोजन, तत्परिमाण तत ( विस्तीर्ण ) तम् । ( क )

८. धुर्य —धुर वोढु समर्थ ( कार्यक्षम । )

९ यदा वसुदेवो देवकीं पर्यणयत् तदा तस्या जात पुत्रस्त्वा हनिष्यतीत्याकाशवाणी कंसेन श्रुता । तत सोऽतीव क्रुद्धो भूत्वा ता स्वभगिनीं देवकीं हन्तुमुद्युक्त । तदा वसुदेवेन स मृदुभाषणेन सान्त्वित । साम्ना—सौम्येन भाषणेन ।

१०. अनर्हया उक्त्या—अयोग्य. वचनै । राजसूयकाले अग्रपूजाविवादे भगवन्त कृष्ण निन्दन् शिशुपाल भगवता हत ।

११ कृत आग ( पाप, पीडा ) येन स कृतागस्क । ( तृ. व ) कालियो नाग यमुनाजलात् कृष्णेन नि सारित । निरयापयत्—नि सारयामास । ( drove out. )

१२. निगमाना आगमाना च ( वेदशास्त्राणा ) वेत्ता । ( ज्ञाता ) धनुष्कवृत्ति ( धनु·सम्बन्धिनी )—क्षात्रवृत्ति· ।

१३. शम्भोः मौलौ ( शिरसि ) इति अधिशम्भुमौलि । ( अव्ययीभावः )

१४ उपहार.—उपायनम्० ( a present. )

१५ अम्बरीषो नाम भगवद्भक्तो राजातिथिं दुर्वासस विहाय द्वादश्यां तीर्थोदक पीत्वा पारणा कृतवान् । तदा स्नानादिक सम्पाद्य प्रत्यागच्छता कुपितेनर्षिणा शप्तो राजा भगवतो विष्णो० सुदर्शनचक्रेण रक्षितः । सुलभकोपः स ऋषिश्च सुदुःसह दुःख प्राप्त० । तस्मादस्थाने ( अनुचिते स्थले ) कोप न कुर्यात् ।

१६. व्यूह—सेनाया रचनाविशेषः । चक्रव्यूह मिन्दन् बालोऽभिमन्युः कुरुभिर्हत ।

१७ विमृश्य—विचार्य । घोरमपि स्वधर्मं चरेत् ।

१८ शराणां तल्पं—( शय्या । ) धर्मज०—युधिष्ठिरः । दु.खेन प्राप्यते अन्त० अस्य इति दुरन्तम् । ( ब )

२० सापत्नमातु कठोरेण वाक्येन तर्जितो बालो ध्रुवो गृहान्निर्गत्य सुतीव्र तपस्तप्त्वा भगवत्प्रसादात् शाश्वत स्थान प्राप्त । व्यवसायिना ( उद्यमशीलेन ) भाव्यम्—उद्यम. खलु कर्तव्य० ।

## एकादशः पाठः ।

वर्तनार्थी—वेतनार्थी । ताम्बूलं दत्वा—वेतनदानाङ्गीकारसूचक ताम्बूलं दत्वा । (appointng ) तद्विनियोग०—तस्य ( सुवर्णचतुष्टयस्य ) विनियोग. ( व्यय. । ) ( ष. त. ) सुनिभृतम्—गुप्ततया । व्ययितम्—( व्यय् ) व्ययीकृतम् । ( spent. ) सूचीभेद्ये तमसि—निबिडे अन्धकारे । आलम्बनम्—निवास., अवस्था-नम् । सर्वमङ्गला—पार्वती ( ' शिवा भवानी रुद्राणी शर्वाणी सर्वमङ्गला । ' इत्यमर । ) उपहारीकरोषि—अर्पयसि । निष्क्रय०—प्रत्युपकरणम् । ( a good return for the pay. ) निस्तार—निष्क्रय. । एतत्परित्यक्तेन—एतेन चीरवरेण वियुक्तेन । सदारपुत्रः—दारैः ( पत्न्या ) पुत्रेण च सहितः । ( सह व. ) सर्वोत्कर्षेण—सर्वोत्कृष्टेन । प्रासादगर्भम्—राजगृहमध्यम् । अकृपण—अदीनः । ( a well-to-do man. ) प्रगल्भ०—धृष्ट०, धीर । प्रस्तुत्य—निवेद्य ।

## द्वादशः पाठः ।

भगवतो वाल्मीकेराश्रमपदमरुन्धतीजनकादय. प्रविशन्ति । ततो लब्धाना-ध्याया आश्रमवटवो मिथ० स्वैरं सलपन्ति अतिथीनुद्दिश्य ।

भूयिष्ठसन्निधापितातिथिजनस्य–(आश्रमपदस्य विशेषणमिदम् ) भूयिष्ठः सन्निधापितः ( प्रापित ) अतिथिजन यस्मिन्, तस्य । ( स व ) समधिकारम्भरमणीयता-समधिकै ( अधिकतरै ) आरम्भै. ( सम्भारैः ) रमणीयता । ( तृ त ) तथाहि–तमेव अर्थमवगच्छ ।

सद्य प्रसूतया प्रियया पीताद् अभ्यधिक ( अवशिष्टम् । ) नीवाराणा ( तृण-धान्यविशेषाणा ) ओदनमण्डम । ( gruel ) ( प त ) उष्णमधुरं तपोवनमृगः पर्याप्त ( यथेप्सितं ) आचामति ( पिबति । )

मनाक् ( ईषत् ) सर्पिष्मतः ( घृतयुक्तस्य ) भक्तस्य ( ओदनस्य ) स्फुरता ( प्रसरता ) गन्धेन अनुसृत ( अन्वित. ) कर्कन्धूफलै ( बदरैः ) मिश्राणा शाकानां पचन ( पाक ) तस्य आमोदः ( गन्ध ) ( प त ) परिस्तीर्यते ( सर्वत्र वितन्यते । )

जीर्णा· कूर्चा. ( beard ) येषा ते । ' कूर्चमस्त्री भ्रुवोर्मध्ये कठिनश्मश्रुकैतवे ' । इति मेदिनी । स्थविराणा वृद्धानाम् सार्थस्य समूहस्य धुरन्धरः नेता । दारानधिष्ठाय–येषा नायको भूत्वेतिभाव· । (being at the head of Dasharatha's wives )

हुम्–सशायार्थे । ( 'हु वितर्के परिप्रश्ने ' । अमर । ) आ·–कोपे । परापतितेनैव–आगतमात्रेणैव । वराकी–दीना । मडमडायिता–भक्षिता । ( मडमडेति शब्दानुकार । ) मधुपर्क· अतिथ्यादिपूजोपचारभेदः ( दधि सर्पिर्जलं क्षौद्र सिता चैतश्च पञ्चभि. । प्रोच्यते मधुपर्क ।) मासेन सहित. भवतु इति वेदे विहितम् । आम्नाय –वेद । श्रोत्रियाय–वेदविदे ब्राह्मणाय । वत्सतरी–द्विवर्षदेशीया गौः । महान् उक्षा–महोक्ष. (महान् वृषभ । ) निर्वपन्ति भोजनार्थं यच्छन्ति । गृहमेधिन –गृहस्थाश्रमिण –समामनन्ति । ( सम्+आ+म्ना ) धर्मशास्त्रविहितमिति वदन्ति । निगृहीतोऽसि–पराभूतोऽसि । ( you are caught. )

मिश्रशब्द पूजायाम् । विशसिता मारिता । विसर्जिता–त्यक्ता ( न मारिता । ) मासाद् अनिवृत्ता अनिवृत्तमासाः ( मासभक्षका· ), तेषाम् । ( प त ) कल्पम्–विधिम् ।

दैवदुर्विपाक·–दुर्भाग्यम् ।

वैखानस –यति । ( 'स तु वैखानसो य स्याद्युक्ताचारो जितेन्द्रिय· ' । चन्द्रद्वीपतपोवने तपस्तप्यमानस्य जनकस्य कतिपये संवत्सरा व्यतीता इत्यन्वय· । प्राचेतसम्–वाल्मीकिम् ( 'प्राचेतसश्चादिकवि ' । अमर )।

## त्रयोदशः पाठः ।

१ जातु-कदाचित् । रुरो·–मृगस्य । गृहीतवर्त्मा–गृहीत वर्त्म येन· स । ( तृ व ) ( मृगानुसारी इत्यर्थ· । ) श्रमेण फेन मुञ्चति इति श्रमफेनमुक् । ( कृ शृ ) तेन तुरङ्गमेण । तपस्विमि गाढाम् ( यस्या तपस्विनः स्नान कुर्वन्ति ता ) तमसा प्राप इत्यन्वयः ।

२ तस्या अम्भसि कुम्भपूरणभव पटु ( मधुर· ) निनद ( शब्द ) उच्चै उच्चचार ( उत्पन्न. । ) द्विरदस्य ( हस्तिन ) वृंहित ( शब्दित ) शङ्कते असौ राजा । शब्दानुसारेण पतति इति, तम् ( कृ. शृ ) इषुम् विससर्ज–अक्षिपत् ।

३. लक्ष्मीकामस्य क्षत्रियस्य युद्धादन्यत्र गजहननं शास्त्रेण निषिद्धम् । शास्त्रनियम विलङ्घ्य । पङ्क्ति ( दश ) रथ· ( दशरथ ) यत् कृतवान् तत् गजहनन नृपस्य अनुचितम् । श्रुतवन्त·–विद्वास । रजोगुणेन निमीलिता· ( दूषिता । )

४ तमसाया जलकुम्भ पूरयन् कश्चित् श्रावणो नाम मुनिकुमार· दशरथशरेण विद्धः आक्रदन्ति–'हा तात' इति । तस्य ( क्रन्दनस्य ) वेतसै गूढ ( छन्न ) प्रभव ( उत्पत्तिस्थानम् ) अन्विष्यन् क्षितीश प्रोतम्–विद्धम् तादृश मुनिकुमार दृष्ट्वा नृपस्य मनसि य ताप ( दुःख ) समुत्पन्नः स शल्य इवासीत् ।

५ तेन ( नृपेण ) पृष्ट· अन्वय (वश ) यस्य स । स्खलद्भि (अस्फुटोच्चारितैः ) अक्षरपदै· आत्मान कथयावभूव ( अकथयत् । ) "शूद्रायामस्मि वैश्येन जातो जनपदाधिप ।" एव श्रावणस्य वंशवृत्तान्तो रामायणे ख्यात ।

६ तेन चोदित. ( प्रेरित· ) तच्चोदित । ( तृ त ) अवसन्ना ( नष्टा ) दृक् ( दृष्टि ) ययो तौ । तयो· पित्रो सकाश त निनाय ( नीतवान् । ) तथागत ( वेतसगूढ ) त एक पुत्र ( श्रावण ) उपेत्य ( समीप गत्वा ) अज्ञानत ( द्विरद इति मत्वा ) स्वचरित ( स्वकृत शरक्षेपणम् ) ताभ्या ( पितृभ्या ) नृपति. ( दशरथ ) शशास ( कथितवान् । ) वेतसगूढ श्रावण गज इति मत्वाह तस्मिन् शरमक्षिपम् इति दशरथस्तस्य पितृभ्या कथितवान् ।

७. तौ दम्पती ( जाया च पतिश्च ) ( द्व ) बहु विलप्य ( रुदित्वा ) शिशो ( श्रावणस्य ) उरस्त ( पञ्चम्यर्थे 'तसिल्' प्रत्यय ) निखात शल्य प्रहर्त्रा ( नृपतिकरेण ) उदहारयताम् । ( प्रयोजकप्रयोगोऽयम् ) परासु –गतप्राण ।

वारिमि –( हस्ते जल गृहीत्वा ) शापो दीयते । तत् जलम् अत्र नयनाभ्या एव प्रसृतम् हस्ते पतितम् इत्यर्थ ।

८ ( वृद्धेन दत्त शापो यथा ) अन्त्ये वयसि भवानपि पुत्रशोकात् दिष्टान्त ( मरणम् ) आप्स्यसि । ( यथा अहं अधुना पुत्रशोकात् मरिष्यामि तथा त्वमपि मरण प्राप्स्यसि इत्यर्थ । ) आक्रान्त ( पादाहत, पादेन ताडित ) पूर्व आक्रान्त आक्रान्तपूर्व, तम् ( प्रथम अपकृत दशरथेन इत्यर्थ । )

९ अय शाप अपि मयि अदृष्टशोभे ( अपुत्रके ) सानुग्रह ( उपकारक एव ) भगवता पातित । पुत्रशोकात् त्व मरिष्यसि इति शापेन सूचित पुत्रसम्भव अपुत्रके नृपे अनुग्रह एव । अत्र दृष्टान्त –इन्धनेद्ध ( काष्ठै प्रज्वलित ) ज्वलन· ( अग्निः ) कृष्या क्षितिं दहन्नपि तामेव वीजाङ्कुराणा जननीं ( उत्पादनयोग्या ) करोति ।

१० इत्थगते ( प्रवृत्ते सति ) अय गतघृण ( अकरुण ) तव वध्य किं विधत्ताम् ( किं मया पापेन अधुना कार्यं ) इति दशरथेनोक्त स मुनि सदार ( भार्यया सह ) परासु ( मृतं ) पुत्र अनुगन्तुमिच्छन् स्वदहनाय अग्निकाष्ठानि ययाचे ( अयाचत । )

११. अस्य ( ऋषे ) शासन ( आज्ञा ) सम्पाद्य ( यथानिर्दिष्ट कृत्वा । ) ( कृत ) पातकेन विलुप्ता धृति. यस्य स । ( ष व ) राजा अन्त ( मनसि ) निविष्ट ( स्थापितम् ) पद ( स्थान ) येन तं ( तृ व ) शाप ( स्वमरणकारण ) दधत् ( धारयन् ) ( वनात् ) निवृत्त । और्व·–ज्वलन· ( वडवानल ) त दधत् अम्बुराशि· ( सागर· ) यथा तथा ।

## चतुर्दशः पाठः ।

अजीजनत्–प्रासूत । ( gave birth to ) आसादितम्–प्राप्तम् । स्त्रीलिङ्गिविप्रवालानाम्–स्त्रिय· च लिङ्गिन ( लिङ्गं चिह्न येषा ते, परिव्राजकादय । ) च विप्रा च बाला च । ( द्व ) प्राणत्यागे सञ्जाते ( उपस्थिते ) अपि तेषु न प्रहर्तव्यमित्यर्थ· । त प्रति प्रचलितौ–त सिंहमभिभवितु प्रस्थितौ इत्यर्थ । भङ्गम्–उत्साहभङ्गम् । दूरतोऽपि नष्टः–दूरादेव प्रधावित· । स्फुरिताधरपल्लव – अधर. इव पल्लव, स्फुरित· अधरपल्लवः यस्य स । ( ष व ) त्रिशिखीम्–तिस्र. शिखा· यस्या ताम् । ( ष व ) ( अतिवक्रामित्यर्थ· । )

## पञ्चदशः पाठः ।

तेजोगर्भम्–तेज गर्भे यस्य तम् । ( ष ब ) सहस्राशु –सूर्य । मणिभासुरम्–मणिना भासुर ( प्रकाशमानम् । ) ( तृ. त ) अलीक –अनृत । ( false ) अपवाद.–निन्दा । पदचिह्नानि–पदाना चिह्नानि ( ष त ) ( foot prints–पदलाञ्छनम । ) व्यापादितम्–मृतम् । घनान्धकारच्छन्नाम्–घनेन ( निबिडेन ) अन्धकारेण च्छन्नाम । ( तृ त ) अवधी –अहन् । व्रीडाभिभूत –व्रीडया ( लज्जया ) अभिभूत ( आक्रान्त· । ) रमणीललामभूताम्–रमणीषु ललामभूताम् ( उत्कृष्टाम् । ) ( स त ) नियुद्धम्–द्वन्द्वयुद्धम् । स्त्रीरत्नभूताम्–स्त्रीषु रत्नभूता ( उत्कृष्टाम् । ) ( स त ) ( जातौ जातौ यदुत्कृष्टं तद्रत्नमभिधीयते । )

## षोडशः पाठः ।

१ पूर्वापरौ–पूर्वश्च अपरश्च ( द्व ) ( प्राच्यपश्चिमौ । ) तोयनिधी ( सागरौ ) वगाह्य ( अवगाह्य, प्रविश्य ) पृथिव्या मानदण्डः ( measuring rod ) इव स्थितः ।

२ सर्वशैलाः ( सर्वे गिरय ) यं ( हिमालय ) वत्स परिकल्प्य दोहदक्षे ( दोहनसमर्थे ) मेरौ दोग्धरि स्थिते सति पृथूपदिष्टा–पृथुनाम्ना नृपेण उपदिष्टा ( प्रदर्शिता ) धरित्रीं भास्वन्ति ( कान्तिमन्ति ) रत्नानि महौषधीश्च दुदुहुः ( अदुहन् । )

३ अनन्ताना ( अपरिमितानां ) रत्नाना ( श्रेष्ठवस्तूनां ) प्रभवस्य ( कारणस्य ) यस्य ( हिमालयस्य ) हिमं, सौभाग्य ( सौन्दर्य ) विलुम्पतीति ( सौन्दर्यघातक ) न जातम् ।

४ य ( हिमगिरि· ) अप्सरसा विभ्रममण्डनानि–( विलासालङ्करणानि ) तेषा सम्पादयित्रीम् । बलाहकाना छेदेषु ( खण्डेषु ) विभक्त. ( सङ्क्रामितः ) राग यया ताम् । ( तृ ब ) धातव सन्तीति धातुमान्, तस्य भावो धातुमत्ता, ताम् । अकालसन्ध्यामिव शिखरै. बिभर्ति ( धत्ते । )

५ सिद्धा.–देवयोनिविशेषा. । आ मेखलाभ्यः–आमेखलम् । सञ्चरतां घनाना ( मेघाना ) अध.सानूनि ( अधस्तटानि ) गतां ( प्राप्ताम् ) छाया निषेव्य

वृष्टिभि उद्वेजिता ( क्लेशिता ) यस्य ( हिमाद्रे ) आतपवन्ति ( आतपयुक्तानि ) शृङ्गाणि आश्रयन्ते ।

६ तुषारस्रुतिधौतरक्त—तुषारस्रुतिभि ( हिमकणै ) धौत ( क्षालित ) रक्त यस्मिन् तत् । ( स व ) हता द्विपा ( गजा ) यै तेषा केसरिणा ( सिंहाना ) पद ( पदचिह्नम ) अदृश्वापि किराता नखरन्ध्रेभ्य मुक्तै ( विसृष्टै ) मुक्ताफलै मार्ग विन्दन्ति इत्यन्वय ।

७ धातुरसेन—धातूना ( सिन्दूरादीना ) रसेन न्यस्तानि ( लिखितानि ) अक्षराणि यासु । अत एव कुञ्जरस्य ( हस्तिन ) ये विन्दव ( पद्मकाख्या आलेखविशेषा· ) ते इव गोणा ( रक्तवर्णा ) भूर्जत्वच ( भूर्जवल्कलानि ) विद्याधराणां वालकाना आलेखा ( चित्राणि ) तेषा लेखा ( लेखनानि ) तेषा क्रियया उपयोगं ( उपकारं ) व्रजन्ति । ( विद्याधरबालाना विहारयोग्योऽय शैल इति भाव । )

८ य ( हिमगिरि ) दरी ( गुहा ) सा एव मुख तस्मात् उत्थितेन ( उत्पन्नेन ) समीरणेन ( वायुना ) कीचका. ( वेणुविशेषा ) तेषा रन्ध्र-भागान् ( छिद्रप्रदेशान् ) पूरयन् उद्गास्यता ( उच्चैः गान करिष्यता ) किन्नराणा ( देवगायकाना ) तानप्रदायित्व उपगन्तु इच्छति । ( The Himalaya, as it were, plays to the tune of the singing of the Kinnaras with the musical notes produced by the wind passing through the holes of bamboos. )

९. विघट्टिताना ( घर्षितानाम् ) सरलद्रुमाणाम् स्रुतानि ( घर्षणात् क्षरितानि ) क्षीराणि येषा, भाव तत्ता, तया हेतुना प्रसूत ( उत्पन्न ) गन्ध सानूनि सुरभीकरोति ।

१० दिवाभीतम्—दिवा ( दिवसे ) भीत ( भयाक्रान्त ) इव तद् ( उलूक-मित्यर्थ· । ) दिवाकर ( सूर्य ) उच्चै शिरसा ( उन्नताना, सज्जनाना ) शरण प्रपन्ने ( शरणागते ) क्षुद्रेऽपि सति नूनं ममत्व ( ममाय इत्यभिमान. ) वर्तते ।

११. चमर्य. ( मृगीविशेषा ) लाङ्गूलाना विक्षेपै ( चालनै. ) विसर्पिण्य ( वितता ) शोभा येषा तै । ( प. व ) चन्द्रमरीचिनिकरेव गौरै वालव्यजनै ( चामरैः ) यस्य ( हिमगिरे· ) गिरिराजशब्दं ( गिरीणां राजा इति सज्ञा )

अर्थयुक्त ( अर्थप्रतिपादक ) कुर्वन्ति । राजानो हि च्छत्रचामरादिचिह्नितः वर्तन्ते तथैव एष गिरिराद इत्यर्थः ।

१२ भागीरथी ( गङ्गा ) तस्याः निर्झरः ( प्रवाह ) तस्य सीकराणा ( कणाना ) ( ष. त. ) वोढा ( वाहकः । ) मुहुः कम्पिताः देवदारवो येन सः । ( तृ व. ) तथैव भिन्नानि शिखण्डिनां ( मयूराणा ) वर्हाणि येन स. । ( तृ ब. ) यद्वायु –यस्य ( हिमाद्रे. ) वायु. । अन्विष्टमृगै –अन्विष्टाः ( मार्गिता. ) मृगाः यैः तै. ( तृ. व. ) किरातै. ( मृगयाटनश्रान्तै. किरातै. इत्यर्थः ) आसेव्यते ।

१३. सप्तर्षीणां हस्तै. अवचितेभ्यः अवशेषाणि ( अवशिष्टानि ) ( पं व. ) यस्य ( हिमाद्रे ) अग्रे ( वर्तमानानि ) यानि सरासि तेषु रूढानि ( पद्मानि ) अध. परिवर्तमानः ( भ्रमन् ) विवस्वान् ( सूर्यः ) ऊर्ध्वमुखैः ( उपरि गच्छद्भिः ) मयूखै ( किरणै· ) प्रबोधयति । सूर्यमण्डलस्यापि उपरि वर्तमानानि हिमगिरे सरासि इत्यर्थ ।

## सप्तदशः पाठः ।

प्रतिपन्नार्थाः–प्रतिपन्नः ( स्वीकृत ) अर्थ. ( कार्य ) यै. ते । ( तृ. व. ) निर्वृतः–सुखितः । गृहधर्मपरायण.–गृहधर्म एव परं ( मुख्य ) अयन ( स्थानं ) यस्य स. । ( ष व ) अरण्यमधिवसन् ( "अधिशीङ्स्थासां कर्म" इत्यनेन अरण्यशब्दाद् द्वितीयाविभक्तिः । ) उपप्लावयितुम्–विनाशयितुम् । बद्धपरिकराः–बद्धा. परिकराः ( कटिप्रदेश· ) यैः ते । ( तृ व ) ( Who had girded up their loins ) आक्रमितुम्–अभिभवितुम् । प्रवभूवु.–समर्थाः अभवन् । अनुयुक्ता.–पृष्टाः । मुखरयति–मुखर ( शब्दयुक्त ) करोति । अवधार्यताम्–ज्ञायताम्, निश्चीयताम् । नामशेषान्–नाम एव शेष येषां ते ( मृतान् इत्यर्थ । ) आस्थाय–कृत्वा । गर्भिणी–दधीचिमुनेः इयं भार्या । निक्षेप.–न्यास. । ( deposit ) दुःखविपाकिनम्–परिणामे दु.खजनकम् । समुद्गताम्–वदनात् बहि. निर्गताम् । शरणम्–रक्षितारम् । ( 'शरणं गृहरक्षित्रोः' । इत्यमरः ) निनीषाम्–नेतुम् इच्छाम् । समेधते–वर्धते । उपप्लवः–त्रासः । ईहमान.–इच्छन् । निकामम्–अत्यर्थम् । भवतः प्रतिपालयन्–युष्मदागमनं कदा भविष्यतीति चिन्तयन् । आपद्य–नीत्वा । साम्प्रतम्–उचितम् । कृत परिहासेन–enough of jesting. जगाद–उवाच, अवदत् । योगयुक्तस्य...निर्वा-

स्यताम्–योगेनाहं तनु त्यजामि ततो मम शवादस्थीनि गृह्णीत तेभ्यश्चास्त्राणि कुरुत । महासत्त्वः–महत् सत्त्व ( धैर्यं ) यस्य स । परमात्मसात् चक्रे–ईश्वराधीन कृतवान् ( प्राणान् अत्यजत् इत्यर्थं । ) विषसाद–विषाद जगाम, खिन्नोऽभवत् । उद्भ्रान्ता–ज्ञानशून्या, मूर्छिता । सोरस्ताडम्–वक्ष स्थलताडनपूर्वकम् । कोष्ठम्–उदरम् । जातवेदसम्–अग्निम् । परावर्न्ति–परावृत्य गच्छन्ति परावर्तन्ते ।

## अष्टादशः पाठः ।

समालम्भनहस्ता–समालम्भनं ( विलेपन अलकरण वा ) हस्ते यस्या सा । ( ष. व ) शिखामज्जिता–शिखाया मज्जिता । ( स त ) ( bathed over head ) प्रतिष्टितनीवारहस्तामि.–प्रतिष्टिता ( निहिता ) नीवारा येषु, एतादृशा हस्ता यासा तामि । ( प व ) स्वस्तिवाचनिकामि–स्वस्ति इति वदन्तीमि· ( तापसीमि । ) जाते–पुत्रि । गौतमीवर्जम गौतमीं वर्जयित्वा ( *leaving गौतमी i. e. except गौतमी* ) । हला–सखे ( 'हण्डे हञ्जे हलाह्वानं नीचा चेटीं सखीं प्रति' । इत्यमर· ) विप्रकार्यते–विकृतं क्रियते । ( is spoiled )

१ केनचित् तरुणा इन्दुवत् पाण्डु ( श्वेत ) माङ्गल्यम् ( मङ्गलकारक ) क्षौमं ( दुकूलं–silk ) आविष्कृतम् ( दर्शितम् दत्त वा । ) केनचित् चरणयो उपभोगः ( रञ्जनादिः–smearing ) तत्र सुलभ ( योग्य· ) लाक्षारस ( a red dye ) निष्ठ्यूतः ( दत्त. । ) अन्येभ्य ( अन्यवृक्षेभ्य. ) पर्वण. ( joint ) भागम्–त मर्यादीकृत्य आपर्वभागं ( with the portions of the hand *coming out upto the joints* ) उत्थितै. वनदेवताकरतलैः आभरणानि दत्तानि इत्यन्वय. । किसलयाना ( कोमलपल्लवाना ) उद्भेदः ( उद्गम. ) तस्य प्रतिद्वन्द्विभि ( प्रतिस्पर्धिभिः । ) ( ष त ). ( emulating the hue of tender sprouts of trees ) अभ्युपपत्त्या–अनुग्रहेण । ( with favour ) अभिषेकोत्तीर्णाय–अभिषेकात् उत्तीर्णाय ( उत्थिताय । ) ( पं त ) अनुपयुक्तानि ( अधृतानि ) भूषणानि येन स· । ( तृ. ब. ) चित्रकर्मपरिचयेन–by our knowledge of the art of painting.

## नवदशः पाठः ।

१. कूलोपान्तविचरन्न्यङ्कु—कूलस्य ( तीरस्य ) उपान्ते ( समीपे ) विचरन्तः ( भ्रमन्तः ) न्यङ्कवः ( हरिणविशेषा· ) यस्मिन् तत् । ( स. व. )

२. तदालोकनजन्मना ( •तपोवनदर्शनात् उत्पन्नेन ) कुतूहलेन अल हृत ( अत्यन्त आकृष्टं ) तं मध्यमलोकस्य ( पृथिव्याः ) पतिं ( राजान ) रमाङ्गदः ( तस्य सचिवः ) जगाद ( अवदत् ) इत्यर्थः ।

३. इय आश्रमभूः ( आश्रमभूमि ) मैथिलीव ( सीता इव ) कामपि ( अवर्णनीया ) श्रिय ( शोभा ) धत्ते ( धारयति ) ।

| | मैथिली | आश्रमभू. |
|---|---|---|
| सतीति शब्दस्य सीमा— | अतिसाध्वी । | अतिरुचिरा । |
| सकुशाङ्का— | कुशाभिध सुत. अङ्के यस्याः सा । | कुशाः ( दर्भाः ) अङ्क यस्याः सा(दर्भयुक्ता । ) |
| अल्पपल्लवा— | अल्पः पल्लव· (वल्ला- श्चलः ) यस्या· सा । | अल्पानि ( मृदूनि, लघूनि ) पल्लवानि यस्याः सा । |

४. हविर्धूमलतालास्यप्रदा —हविषां ' धूमः एव लता, तस्यै लास्य ( नर्तन ) प्रददाति ( शिक्षयति ) इति । ( कृ. वृ. ) पुरोडाशः—हविः । ( offering to fire )

५. हेमवल्कला —हेम्न. ( सुवर्णस्य ) वल्कलानि येषां ते । ( ष व. ) उन्निद्रहेमपद्मानि-उन्निद्राणि ( विकसितानि ) हेमपद्मानि ( सुवर्णकमलानि ) येषु तानि । ( स. व. )

६. काकपक्षाङ्कमूर्धानः—काकपक्षाणा ( शिखण्डकानां ) अङ्काः ( चिह्नानि ) येषु ते । ( स व. ) काकपक्षाङ्काः मूर्धान येषा ते । ( ष. व. ) वटवः हस्तेन समिधः खण्डयन्ति, मुखेन च वेदवाक्याना पदानि खण्डयन्ति ( वियोजयन्ति । )

८ गण्डलेखाम्—गण्डस्थलम् । हरिः—सिंहः ।

९. प्रभामण्डलपर्यस्तः—प्रभायाः मण्डल ( तेजोवलय ) तेन पर्यस्तं ( दूरं क्षिप्त ) तमः यै. ते । ( तृ. ब. ) पातालरवय —यथा भूवलयस्थितानां जनानां

स्वयः आकाशे दृश्यन्ते तथैव पातालस्थिताना जनाना स्वयः एते महर्षय. तव पथि ( मार्गे ) आपतन्ति ( वर्तन्ते ) इत्यर्थ. ।

१०. कपिलासि ( रक्तवर्णासि. ) गोसि· ( धेनुसि· ) अलङ्कृतम् । अभित—परित. । ( surrounding ) शिर·—मस्तकम् ।

११. गात्रपरावृत्तिमन्नास्थिपरुपेतरान्—गात्राणां ( अवयवाना ) परावृत्तिः ( चालन ) तेन भग्नानि अस्थीनि येषा, अत एव परुपेतरान् ( मृदून् ) शय्या-कुशान् । ( bed of grass )

१२ यथा दिवाकर ( सूर्यः ) सन्ध्यया, तथा अयं ऋषि धेनुना अनुगम्यते ।

१३. भवतात्—भवेत् । प्रत्युटजं—उटजे उटजे इति । ( अ. )

१४. कौतुकोत्तानितेक्षणा.—कौतुकेन उत्तानितानि ( विकसितानि ) ईक्षणानि यासां ताः । ( प व )

१५ सविश्ववर्त्मनि—समीपमार्गे ।

पृथ्वीशशाङ्केन—पृथ्वीं आगत. शशाङ्क तेन । ( शशाङ्कवत् आल्हादक एप. नृपः इति भाव. । )

## विंशः पाठः ।

दुर्निवारभुजप्रतापनिर्जिताराते.—दुर्निवार यः भुजप्रताप तेन निर्जिता. अरातयः ( शत्रव. ) येन स , तस्य । ( तृ. व. ) ललनाजनमण्डनायमाना—ललनाना जनः ( समूहः ) तस्य मण्डन ( भूषणं ) इव आचरतीति सा । सम्मदविक-सिताननः—सम्मदेन ( आनन्देन ) विकसित ( प्रफुल्ल ) आनन ( मुख ) यस्य स. । ( प. व. ) पञ्चपमासदेशीयेन—पञ्च वा पट् वा पञ्चपा , ईषत् न्यूना. पञ्चपाः मासाः यस्य स·, तेन । ( प. व. ) आमयः—रोगः । कालवश-मुपजग्मतु —पञ्चत्व अगच्छताम् । कीटकोत्कीर्णनि सारवंगवत्—कीटकैः उत्कीर्ण ( उल्लिखित. ) अत एव नि.सार· ( लघुः ) य. वश तस्य सदृशम् । ( प. त )

सपदि अभिपत्य—attacking instantly. परिरुरुधु —besieged. आत्मसात्—स्वाधीनम् । अवस्कन्द्य—आक्रम्य । मातृनिर्विशेषया—मातु अपेक्षया निर्गतः विशेषः यस्याः सा तया, मातृसदृशया इत्यर्थ. । अपवाहित—दूर नीतः । व्यतिकरे—प्रसङ्गे । कामयमाना—इच्छन्ती ।

प्रच्छायशीतलस्य—प्रकृष्टाः छायाः प्रच्छायं ( 'छायावाहुल्ये' इत्यनेन नपुसकैक-

वचनम् ।) तेन शीतलं तस्य । अञ्चलेन–border or end. प्रावृत्य–आच्छाद्य । ग्राह.–मकरः । अशरणा–अनाथा । तदात्वे एव–तस्मिन्नेव काले । प्राणैः व्यहीयत–पञ्चत्व गता, ममार इत्यर्थः । विहायसम्–आकाशम् । पुलिन्दा.–शबराः । आखेटविहारम्–आखेटस्य (मृगयायाः) विहार (क्रीडाम्)। आकुलाकुलः–आकुलेभ्यः अपि आकुल, अतिदुःखितः इत्यर्थ । प्रीतिविस्फारितेक्षणः–प्रीत्या विस्फारिते (विकसिते) ईक्षणे यस्य स ।(ष व.)

## एकविंशः पाठः ।

पाटवम्–कौशल्यम् । मध्याह्नसहस्रकरकिरणजालस्तापतप्त·–अह्न· मध्यं मध्याह्नः। सहस्र करा यस्य स· । (सूर्यः) मध्याह्ने स्थित सहस्रकर·–तस्य किरणाः–तेषा जाल–तस्य ताप–तेन तप्त । (तृ त) क्षीरतरु–वटवृक्षः । कृष्णसार·–कृष्णमृगः । उत्तरीयम्–वस्त्रम् । भसितम्–भस्म । प्रणयगर्भाम्–प्रेमपूर्णाम् । दृक्–दृष्टिः । अनुयोक्तुम्–प्रश्नुम्। प्रत्याययति–विश्वासमुत्पादयति–ज्ञापयति–बोधयति वा । अभिजातत्वम्–कुलीनत्वम् । अवयवसन्निवेशा·–अवयवाना रचना । प्रणिधानेन–चित्तैकाग्र्येण । साक्षात्कृत्य–दृष्ट्वा । व्यापत्तिम्–misfortune or disease or death. उन्मेषम्–opening or flash. उदन्तम्–वृत्तान्तम् । सुप्तोत्थितः–आदौ सुप्त. पश्चात् उत्थितः ।(क) पित्र्यपदासादनोपाय–पितुः इद पित्र्यं, पित्र्य च तत् पदं च, तस्य आसादनम् (प्राप्तिः)–तस्य उपाय. ।(ष. त.)

## द्वाविंशः पाठः ।

१ सदा अवगाहाय (स्नानाय) क्षम (युक्त·) वारिसञ्चयः यस्मिन् सः । (स व) ('युक्ते क्षम शक्ते हिते त्रिषु ।' अमर ।) निदाघकाल–ग्रीष्मकालः ।

२ शशाङ्कक्षतनीलराजय–शशाङ्केन (चन्द्रेण) क्षताः (दूरीकृताः) नीलराजय·, यासां ता. निशा । (ष व) जलयन्त्रमन्दिरम्–जलयन्त्रेण (fountain) युक्त मन्दिरम् । जनस्य सेव्यतां यान्ति–उपभोगयोग्यानि भवन्ति ।

३ प्रवासिभिः भूमि द्रष्टुमपि न शक्यते। अर्थात् तत्र गमन तु दूरमेव ।

४. महत्या तृषा परिशुष्का. तालव. येषा ते (ष. व.) मृगा. । भिन्नेन

अञ्जनेन सन्निभं ( तुल्य ) नभ ( आकाश ) वीक्ष्य तोयमिति शङ्कया वनान्तर प्रधाविताः ।

५ हतविक्रमोद्यम –हत विक्रमस्य उद्यम यस्य स । ( प व ) विदारित–विवृतम् । मृगेश्वर ( सिंह· ) अदूरे ( समीपे ) वर्तमानान् गजान् न हन्ति ।

६. विशुष्कात् कण्ठात् उद्गता ( वहिर्गता ) ये शीकरा ( अम्बुकणा ) ते एव अम्म येषा ते । ( ष व ) भानुमत ( सूर्यस्य ) गभस्तिभि ( किरणै ) अभितापिता. । ( तृ. त ) प्रवृद्धया तृष्णया उपहता ( पीडिता । ) ( तृ त. ) एतादृशा दन्तिन. ( गजा. ) केसरिण ( सिंहात् ) अपि न विभ्यति ।

७. अवाङ्मुख.–अवाग् ( अध. ) मुख यस्य स· । ( प व. ) जिह्मगति–वक्रगति. । फणी ( सर्प. ) मयूरस्य तले निषीदति ( उपविशति । )

८ हुताग्निकल्पै –हुत चासौ अग्निश्च–तत्कल्पै ( तत्सदृशै. । ) ( त. स ) ( प्रचण्डै· इत्यर्थ । ) कलापिन ( मयूरा ) कलापचक्रेषु ) वर्हमण्डलेषु ) निवेशितानन भोगिनमपि ( सर्पमपि ) न घ्नन्ति ।

९ तीक्ष्णतरा अशव. ( किरणा ) तेषा माला वर्तते यस्य तेन । ( त. व ) विवस्वता ( सूर्येण ) अभितापित भेक· । आतपत्र ( छत्र ) तस्य तले निषीदति । भोगिन –( 'उरग पन्नगो भोगी । ' अमर. । )

१० रविप्रभया उद्भिन्ना ( निर्गता ) शिरोमणे· प्रभा यस्य स । ( प व ) विलोलेन–चञ्चलेन । तृषाकुल फणी मण्डूककुल न हन्ति ।

## त्रयोविंशः पाठः ।

आधातार –कतार । सम्पद्यन्ते–भवन्ति । समसंस्थितस्य–समानावस्थस्य । स्थूणानिखननन्यायेन–स्थूणा–स्तम्भ । यथा स्थूणा असकृत् सञ्चाल्य निखननेन दृढा भवति तथा विपन्निवारणाय य परमुखं प्रेक्षते स समधिकमेव विपदि निमज्जति । सौरभस्य–सुगन्धस्य । पयस. कृते–दुग्धार्थम् । आत्मनिर्विशेष–आत्मन. निर्गत विशेष· यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात् तथा । ( अ ) स्वप्राणसदृशमित्यर्थ । निदानम्–कारणम् । नीवापोदकम्–मृताय दीयमान पिण्ड जलाञ्जलिं च । परस्तात्–परलोके । अभिसन्धाय–मनसि कृत्वा । पर्यवस्यति–फलिष्यति, फलति ।

# चतुर्विंशः पाठः ।

( यदा कैकेय्या वचनाद् रामो वनमगच्छद् दशरथश्च मृतस्तदा मातुल-गृहाद् भरतमानेतु दूत प्रहित । तेन सहागच्छन् भरतो मध्येमार्गं दैवतगृहं प्रविश्य तत्र स्थिता इक्ष्वाकुकुलोपरताना नृपाणा प्रतिमा आलोक्यन् स्वपितु-र्निधनमवगच्छति । )

प्रहरणम्–आयुधम् । क्रियामाधुर्यम्–शिल्पसौन्दर्यम् । भावगति·–ex-pression. दैवतोद्दिष्टानाम्–प्रतिमात्वेन सङ्कल्पितानाम् । मानुषविश्वासता–having exact resemblance to the man चतुर्दैवत·–चत्वारि दैवतानि अवयवा यस्य–स तथाभूत. । ( ष व ) स्तोम–प्रतिमासमूह ।

१. दैवतमित्येव–दैवतम् इद इति बुद्धया । अय प्रणाम । अमन्त्रार्चित-दैवत –अमन्त्र ( विना मन्त्रेण ) अर्चित ( पूजित ) दैवत यस्मिन् स । ( स व ) वार्षल –वृषलेन ( शूद्रेण ) कृत.–तादृश ।

देवकुलिक·–देवगृहपूजक. । नैत्यकावसाने–नित्यकर्मण· ( देवपूजादे. ) अवसाने ( समाप्तौ । ) प्राणिधर्मम्–भोजनम् । अल्पान्तराकृतिरिव–समाना-कृतिरिव ।

२ अस्मासु किंचित् वक्तव्यम् ( दूषणम् ) अस्ति किम् ( येन मया कृतः प्रणाम न स्वीक्रियते । ) अथवा विशिष्ट –( विशेषेण शिष्ट. ) मदपेक्षया उत्कृष्ट· कोऽपि अन्य. जन प्रतिपाल्यते ( प्रतीक्षते । ) अथवा नियमप्रभविष्णुता–आत्मनः तपोनुष्ठानप्रौढि· इयम्, येन मत्प्रणामस्य प्रतिषेध· क्रियते । अत्रभवन्त –एते पूज्याः ।

३ असुरपुरवधे–त्रिपुरासुरवधे ।

अभिसरीम्–साहाय्यार्थं अभिगमनम् । सपुरजनपदा·–पुरजनपदसहिताः स्वसुकृतै· शक्रलोक ( इन्द्रलोक, स्वर्ग ) यान्ति । छन्द मृगयता–एतेषां इक्ष्वाकूणा इच्छा प्रतिपाल्यता । कृत्स्नाम्–सर्वाम् । मृत्युना चिरं ( दीर्घकाल ) ये अनवसिता ( अनाशिता· ) सन्ति ।

मया महत् फलमासादितम्–महापुरुषप्रतिमावलोकनरूप महत् फलम् ।

सन्निहितसर्वरत्नस्य–सन्निहितानि सर्वरत्नानि यस्मिन् स. तस्य । ( स. व. )

प्रज्वलित· धर्मरूपः प्रदीप· येन स । ( तृ. व ) धर्म एव परं अयन ( स्थानं ) यस्य सः तस्मै ( प व ) धर्मनिरताय इत्यर्थ ।

सवेशनोत्थापनयो –संवेशने ( शयनवेलाया ) उत्थापने च ( उत्थानवेलाया ) च । ( द्व ) रक्षाम्–protection. निर्वेद –disgust, lack of desire. नित्यावभृथस्नानप्रशान्तरजा –नित्यम् अवभृथस्नानै ( यज्ञदीक्षाभिषेकैः ) प्रशान्त रज. ( दु·ख ) यस्य स । ( प व ) धरमाणानाम्–सजीवानाम् । अतिक्रान्ता-नाम–मृतानाम् । स्त्रीशुल्क –विवाहकाले स्त्रियै देयतया पणित द्रव्यम् । प्रत्यागत्य संज्ञां लब्ध्वा । सकामं भव–इष्टार्थं लभस्व । शुद्धिं नेतव्य –to be purified. उपरत –मृत· । अटवीभूताम–अरण्यतुल्याम् । पिपासार्त –तृषित ।

## पञ्चविंशः पाठः ।

१. दमयन्त्यलाभेन कुपित कलिर्द्वापरेण सह समन्त्र्य मणिमय विहङ्गमरूप धृत्वा दमयन्त्या सकाशान्नल वियोजयितुं विपिने तयोर्दृष्टिपथमाययौ । तद्विहङ्गमद्वन्द्व दृष्ट्वा तद्ग्रहणाय दमयन्ती नल प्रेरयामास । विहगानुसारेण दूरं गतमन्तर्हित च नल ज्ञात्वा वियोगविक्लवा दमयन्ती विललाप । सा वदति ।

२ उभौ पतत्रिणौ ( विहङ्गमौ ) परिगृह्य ( गृहीत्वा ) त्वमसि इति मे ( मया ) प्रतिपन्नम ( ज्ञातम् ) एव ।

४ अकाण्डकौतुकै –अकाण्डे ( abruptly, unexpectedly ) कौतुकै· ( कुतूहलै । ) खेदानि सहौ–खेद सोढुमसमर्थौ ।

५ परिधूसरीकृतम–मलिनीकृतम् । सुधानिधे –चन्द्रस्य ।

६. वलितक्रमम्–वलित ( वृद्धिंगत ) क्रम ( खेद ) यस्मिन् तत् । ( स. व )

८ सभया–भयाक्रान्ता, भीतभीता ।

९ अन्यवधूचितम्–सामान्यवध्वा उचितम ।

१०. गिर –वाचः । निगदन्ती–भाषमाणा ।

११. इमौ विहङ्गमौ मा प्रतार्य ( वञ्चयित्वा ) मे दयित ( वल्लभं–नल ) तिरयाम्बभूवतु. ( अन्तर्हित चक्रतु· । )

१२. सप्तसमुद्रमुद्रिता–समुद्रवलयाङ्किता । अक्षमायते–असमर्थो भवति ।

१४. तरिः—नौका ।

१५ पणीकृता—used as wager. दीव्यता—द्यूतेन क्रीडता ।

१७. दमस्वसा—दमस्य स्वसा—दमयन्ती ।

१८ रुषम्—कोपम् ।

१९ अविषह्यविपाकजृम्भितम्—अविषह्य. ( सोढुं अशक्यः ) विपाकः ( परिणामः ) तेन जृम्भितम् ( वर्धितम् । ) ( तृ त. )

२०. तपस्विनीष्वपि—दीनासु अपि । प्रथमोदाहरणत्वमानयः—प्रथमोच्चारणीया विहिता ।

२३. परलोकजुष.—परलोकं ( स्वर्गं ) जुषन्ते ( सेवन्ते, गच्छन्तीत्यर्थः ) तान् । ( कृ भृ. ) विहास्यति—त्यक्ष्यति ।

२४ विपदां निवन्धनम्—विपदा ( दुःखाना ) निवन्धनं ( कारणम् । ) ( ष त ) सिंहिकासुत·—राहुः । दर्शतिथे—अमावास्यायाः ।

## षड्विंशः पाठः ।

पुरूरवस सङ्गमनीयो नाम मणिः केनापि गृध्रेणापहृतः । तदा वाणपथातीतं तं गृध्रं वीक्ष्य सायं निवासवृक्षाश्रयिण तं विहग विचिनुतेति सर्वत्रोद्घोष्य स नृपतिर्विदूषकेण सह सॅल्लप कुर्वन् स्थितः । अत्रान्तरे केनापि स गृध्रः शरेण हृतः । अय स शरोऽयं च स मणिरिति कथयन् कञ्चुकी प्राप्त· । ततः शरे स्थितानि नामाक्षराणि वाचयित्वोर्वशीकुमारस्याय शर इति राज्ञा ज्ञातम् । इत्थं गते कापि तापसी तमेव कुमार गृहीत्वा प्रविशति ।

गृध्रलक्ष्यवेध्यर्धनाराच—गृध्र एव लक्ष्यं तद्विध्यतीति गृध्रलक्ष्यवेधी—अर्ध. ( अर्धचन्द्राकृतिः ) नाराच·( वाण· । ) ( क )

१ वाष्पायते—वाष्पमुद्वमति—अश्रुपूर्णा भवतीत्यर्थ. । वात्सल्यस्य ( प्रेमातिशयस्य ) वन्धोऽस्यास्तीति । प्रसाद—प्रसन्नता । वेपथु.—कम्पः । अदयम्—अशिथिलम् । परिरब्धुम्—आलिङ्गितुम् ।

२. हार्दम्—प्रेम । उत्सङ्गे ( अङ्के ) वर्धितानां पुत्राणा पितृषु कीदृश· स्नेहो भवेत् ।

अभिविनीतः—शिक्षितः । आश्रमविरुद्धम्—आश्रमजनानामनुचितम् । निर्यातय—प्रत्यर्पय ।

३. सर्वांङ्गीण –सर्वाङ्गव्यापी । चन्द्रकर –चन्द्रस्य किरणः । शाखामृग –वानरः । संयम्यमानशिखण्डक –संयम्यमानः ( वध्यमान ) शिखण्डक ( शिखा ) यस्य सः । ( प च )

४ स्नेहेन ( प्रेम्णा ) प्रस्रव. ( दुग्धस्याभिस्यन्दन ) तेन निर्भिन्न ( नितरा भिन्नं–आर्द्रीभूतम् ) स्तनांशुकम् ( स्तनयोरुपरि वर्तमान वस्त्र ) उद्वहन्ती ( धारयन्ती । )

कवचहर·–कवचधारणक्षम । अवितृष्णा–न विगता तृष्णा यस्या सा ( प. व ) सामिलाषा । पूर्वस्मिन्नाश्रमे–ब्रह्मचर्याश्रमे । द्वितीयं–गृहस्थाश्रमम ।

## सप्तविंशः पाठः ।

अर्थी–याचक । कुण्डल्यो. अर्थेन–कुण्डले प्राप्तुम् अथवा कुण्डल्यो हेतुना । पिनद्धे–धारिते । विमृश्य–विचार्य । नियतम–निश्चितम् । उपस्पृष्टम–जलेन क्षालितम । प्राङ्मुख –प्राचि ( पूर्वस्या दिशि ) मुख यस्य स । ( प व. ) खानि–इन्द्रियाणि । मुमूर्षम–अनीवाग्रहेण । अप्रमत्तः–प्रमादमकृत्वा । ( unmistakably ) मुनिर्वृता–निश्चिन्ता । क्रियतां क्षण इति–मया क्रियमाणे श्राद्धे क्षण ( मत्प्रार्थनास्वीकार ) कर्तव्य. । यथोपपन्नेन–तस्मिन् काले विद्यमानेन ।

## अष्टाविंशः पाठः ।

१ मध्यङ्गतम्–व्योममध्य तारामध्यं च प्राप्तम् । अंशुमन्तम्–चन्द्रम् । वितानम्–ceiling ( छत इति महाराष्ट्रभाषायाम् । ) उद्वमन्तम् ( सर्वत्र क्षिपन्तम् ) चन्द्र स. ( मारुति ) ददर्श । भानुमन्तम–किरणवन्तम । गोष्टे-गोनिवासस्थाने ।

२ समेधयन्तम्–वर्धयन्तम । विराजयन्तम् शोभायुक्त कुर्वाणम । अभियान्तम–आकाशे उपरि उपरि गच्छन्तम ।

४. राजतपञ्जरस्थ.–रजतस्य इद राजतम ( रौप्यमय ) तस्मिन् रौप्यमय-पञ्जरे तिष्ठतीति ।

५ ककुभान्–नृपः । जाम्बूनदम्–सुवर्णम । ( 'स्वर्णं कार्तस्वर जाम्बू-नदमष्ठापदोऽस्त्रियाम ।' अमर· । ) । परिपूर्णश्चन्द्रः–पूर्णेन्दु ।

६. विनष्टः शीताम्बुतुषाराणा पङ्क यस्य सः । ( प व ) शिशिरक्रतो

निर्गतत्वात् । महाग्रहस्य ( सूर्यस्य ) ग्राहेण ( किरणसक्रमेण ) विनष्ट· पङ्कः ( तम. ) यस्य स. । ( ष· व ) प्रकाशकान्त्या आधयेण निर्मल· ( स्वच्छ. ) अङ्क ( कलङ्क· ) यस्य स· । ( ष व )

८. प्रकाशमान य· चन्द्रोदय· तेन नष्ट दोष. ( तिमिरज ) यस्य स· । ( ष. व ) प्रवृद्ध. रक्षसा पिशिताशाना ( पिशाचानां ), च दोष ( त्रास· ) येन सः । ( तृ व ) ईरित ( निरस्त. ) चित्तदोषः येन स. । ( तृ. व. ) स्वर्गेऽपि प्रकाश ( ख्यातिः ) यस्य स । ( ष व. )

## नवविंशः पाठः ।

अवलेपम्—गर्वम् । एकान्तत.—निश्चयेन । कामयसे—इच्छसि । प्रेमभरमन्थरेण—प्रेमातिशयनिश्चलेन । व्यापृत —आसक्त· ( कृषिकर्मं कुर्वन् इत्यर्थं )। एकतानमना.—एकाग्रचित्त —समाहितचित्त । ( concentrated in )

## त्रिंशः पाठः ।

निमित्तम्—अशुभस्य लक्षणम् ।

स्पन्दसे—स्फुरसि । मनोरथाय नाशसे—मनोरथस्य ( शकुन्तलाप्राप्तेः ) आशंसापि नास्ति । पूर्व अवधीरितम्—तिरस्कृतम् । परिवर्तते—प्रत्यागच्छति । अभूमिरियमविनयस्य—अत्र अविनयो न कदापि द्रष्टव्यः ।

अवुध्यमान — curbed, checked अवालसत्त्व —अवालस्य ( प्रौढपुरुषस्य ) सत्त्वं ( बल ) यस्य स· । ( ष. च ) आमर्देन ( आकर्षणेन ) क्लिष्टाः ( disordered ) केसराः यस्य तम् । ( ष व )

अपत्यनिर्विशेषाणि—अपत्यसदृशानि । स्थाने खलु...नामधेयोऽसि—ऋषिजनै. सर्वदमन इति यत्तव नामधेय कृत तत् सर्वथा योग्यमेव । लङ्घयिष्यति—तवोपद्रव करिष्यति । अधर दर्शयति—अधरदर्शनेन परिहास सूचयति । ( ridicules ) एधापेक्षः—एध ( इन्धन ) तस्य अपेक्षा यस्य सः । ( ष. व. ) अनिमित्तहासै —अकारणहासै. । दन्ता· मुकुला· ( buds ) इव ते दन्तमुकुलाः । ईषद् लक्ष्या ( दृश्या. ) दन्तमुकुलाः येषा ते तान् । ( ष. व ) अव्यक्ता· वर्णा· यासु ता·, अत एव रमणीया वचःप्रवृत्तय· ( वचनानि ) येषा तान् । ( ष. व ) अङ्के यः आश्रय ( स्थितिः ) तत्र प्रणयः

( प्रीति· ) येषाम् तेषाम् । ( ष ब. ) एतादृशान् तंनयान् वहन्त ( धारयन्त ) जना· धन्याः ।

दुर्मोकहस्तग्रहेण–दु खेन मोचयितु शक्य. दुर्मोक·, हस्तेन ग्रहः हस्त-ग्रहः, दुर्मोक हस्तग्रह यस्य स तेन । ( ष् व ) प्रक्रान्तम्–आरब्धम । शकुन्तलावण्यम्–शकुन्तस्य ( पक्षिण· ) लावण्य ( शोभाम् । ) ( ष. त ) रक्षाकरण्डकम्–रक्षणार्थं कल्पिता ( मन्त्रिता ) पेटिका । प्रत्याययति–निश्चयेन दर्शयति ।

## एकत्रिंशः पाठः ।

१. तत्र–अलकानगर्याम् । धनपति· कुबेर· । सुरपतिधनुश्चारुणा–इन्द्रचापवत् सुन्दरेण ( मणिमयत्वात् ) मदीय आगार ( गृह ) वर्तते इत्यन्वय. । यस्य गृहस्य उपान्ते ( पार्श्वदेशे ) मे कान्तया वर्धित· कृतकृतनय· ( पुत्रत्वेन अभिमन्यमान ) हस्तेन प्राप्त· स्तवकैः ( गुच्छैं· ) नमित. ( वृ त. ) बालश्चासौ मन्दारवृक्षश्च ( क ) ( देवतरु ) अस्ति ।

२ मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा–मरकतशिलाभिः ( emerald stones ) बद्ध सोपानमार्ग. यस्या· सा । ( ष व ) वैदूर्यवत् स्निग्धानि नालानि ( the stem of a lotus ) येषा तैः । ( ष व ) हैमैः ( सुवर्णमयैः ) छन्ना ( खचिता ) एतादृशी वापी अस्तीति अन्वय. । यस्याः तोये कृतवसतय· हंसाः त्वा ( मेघ ) अपि प्रेक्ष्य व्यपगतशुच· ( नष्टशोका· ) भवन्ति । सन्निकृष्टं मानस न ध्यास्यन्ति ( न स्मरिष्यन्ति । )

३ पेशलै –चारुभि । उपान्तस्फुरिततडितं–उपान्तेषु स्फुरिता· तडितः यस्य तम् । ( प व ) एतादृश त्वा ( मेघं ) प्रेक्ष्य, तमेव ( क्रीडाशैलमेव ) मद्गेहिन्या ( मम भार्यायाः ) प्रियः इति स्मरामि ।

४ कुरवका. एव वृति· ( आवरणं ) यस्य तस्य । ( ष व ) माधवीलता-मण्डपस्य । प्रत्यासन्नौ–नातिदूरौ । चला ( चञ्चलाः ) किसल्याः ( कोमलपल्लवा ) यस्य स ( ष व ) रक्ताशोक· । कान्त –सुन्दर· । केसर·–वकुल· । मया सह एकः तव सख्या ( मे प्रियायाः ) वामपादा-भिलाषी । अह स वृक्षश्च प्रियाया· पादाघातं इच्छाव· इत्यर्थ· । [ 'प्रमदाया. पादाघातेन अशोक विकसति' इति प्रसिद्धम् । ] अन्यः

केसरवृक्षः ( अहं च ) दोहदस्य ( पुष्पादीना उत्पादकद्रव्यस्य ) छद्मना ( व्याजेन ) ( मे प्रियाया.) वदनमदिरा ( वदने धृतां मदिरां, गण्डूषमद्यं ) काङ्क्षति ( अभिलषति । ) वकुलस्य गण्डूषमद्यं दोहद इति प्रसिद्धम् ।

५. तन्मध्ये—तयोर्वृक्षयोः मध्ये । अनतिप्रौढानाम् ( कोमलानां ) वंशानां प्रकाश. इव प्रकाश. येषा तै. ( ष. व. ) मणिभिः मूले बद्धा स्फटिकफलका ( स्फटिकमय पीठ ) यस्याः सा ( ष. व ) काञ्चनी वासयष्टिः । शिञ्जा ( भूषणध्वनः ) ताभिः प्रधानानि वलयानि—तैः सुभगाः ( रम्याः )—तैः तालैः ( करतालिकाभिः ) नर्तितः वः सुहृद् ( सखा ) नीलकण्ठः ( मयूरः ) यां यष्टिकां अध्यास्ते ( अधिवसति । )

६. लिखितवपुषौ—लिखिते वपुषी ( आकृती ) ययोः तौ । ( ष. व. ) क्षामच्छायम्—क्षामा ( क्षीणा ) छाया ( कान्तिः ) यस्य तत् । सूर्यस्य अपाये ( सूर्ये अस्तंगते ) कमलं स्वा अभिख्यां ( निजशोभां ) न पुष्यति ( न बिभर्ति न प्रकाशयति वा । )

७. सम्पात—प्रवेश. । कलभतनुतां—कलभस्य ( करिपोतस्य ) तनुः, कलभतनोः भावः कलभतनुता ता गत्वा ( प्राप्य । ) अल्पात्यासं—अत्यल्पप्रकारा भाः ( प्रकाश ) यस्या. सा । ( प व. ) खद्योतानां आली, तस्या विलसितेन ( स्फुरितेन ) निभां ( समानाम । ) विद्युदुन्मेष. ( विद्युत्प्रकाश ) स एव दृष्टिः, ताम् । ( क ) भवनस्य अन्त—भवनमध्ये पतिता । कर्तुमर्हसि इत्यन्वयः ।

[ The cloud will have a look ( in the form of the flash of lightning ) inside the Yaksha's house. ]

## द्वात्रिंशः पाठः ।

सश्रीकतां—शोभाम् । पण्यानि—विक्रेयानि । (to be sold. ) शुल्कम्—( tax ) साधयन्त. ( हरन्तः ) मधुकराः एव पुरुषा. ( राजपुरुषाः प्रविचरन्तीत्यर्थः । ) असंस्काररमणीयम्—अकृत्रिममनोहरम् । प्रग्रहः—( रज्जु. । ) वर्त्मनि ( मार्गे ) उज्झित ( पतित ) यत् दारु तेन वारिता ( रुद्धा ) गतिः यस्य स । ( प व. ) स्वैरं—मन्दं मन्दम् । प्रेरितगोयुगः—प्रेरित गोयुगं येन सः । ( तृ व. ) गुप्तार्यकप्रवहणस्थः—गुप्ततया अवस्थित आर्यको यत्र एतादृशं प्रवहणं अधितिष्ठतीति । ( कृ. वृ. ) भीतभीत.—भीतादपि भीतः ( अतीव भीत इत्यर्थ. । ) निगड—chain. सावशेषां-

पसार°—सावशेप ( अवशिष्ट ) अपसार ( पलायन ) यस्य स. । ( प व. ) सावोः नाम चाण्डत्तस्य । कोकिला. स्वमपत्यजात काकनीडे स्थापयन्ति । काकाः अपि तत् स्वपुत्रभ्रान्त्या सुतनिर्विशेप परिपालयन्ति । व्यसनार्णवोत्थितम्—व्यसनं ( संकट, राजवन्धरूप ) एव अर्णवः ( सागर ) तस्मात् उत्थित ( उत्तीर्णम् । ) ( प त. ) निर्वृतिम—आनन्दम । यानास्तरणम—यानस्य ( शकटस्य ) आस्तरणम ( आच्छादनम । ) पृथुतरसमवक्षा—पृथुतर ( अतिविशाल ) सम वक्षः यस्य सः । ( प. व. ) ताम्रलोलायताक्ष.—ताम्रे ( रक्ते ) लोले ( चञ्चले ) आयते ( दीर्घे ) च अक्षिणी यस्य स. । ( प व. ) गोपालप्रकृति—गोपालजातिः । घोष—a station of cowherds सन्नच्छस्व निगडानि—( चेट प्रत्युक्तिरियम । ) त्व निगडैः वद्धो भव इत्यर्थ । साम्प्रत वयं... —साम्प्रत वय अस्यार्यकस्य स्थाने गच्छाम ( राजा अस्मान् निगडीकरिष्यतीति भाव । ) प्रणयेन—स्नेहेन । प्रत्यग्रापनीतसयमनस्य—प्रत्यग्र ( अचिरात् ) अपनीत ( दूरीकृत ) सयमन ( वन्धन ) यस्य सः तस्य । ( प व ) लघुसञ्चारा—लघु सञ्चार ( गमन ) यस्या सा । ( प व ) स्वात्मापि विस्मर्यते—त्व मे प्राणेभ्योऽपि अधिक. इति भाव. । यत्नोद्यते पालके महती रक्षा वर्तते—पालक· राजा महान्त यत्न आतिष्ठति । तेन च सर्वाणि स्थानानि सुरक्षितानि भवन्ति । चार.—a spy. व्यलीकम—अप्रियम । पुराणकूपे—जीर्णकूपे ।

## त्रयस्त्रिंशः पाठः ।

शतपथब्राह्मणम—ब्राह्मणानि वेदवदपौरुपेया गद्यमया निवन्धाः । ऋग्वेदस्यैतरेय ब्राह्मणम । शुक्लयजुर्वेदस्य च शतपथब्राह्मण विद्यते । अस्मिन् यज्ञविधिर्विस्तरेण प्रपञ्चितः ।

स..... .धर्मम्—सः प्रजापतिः ( सृष्टिमुत्पाद्य ) नैव व्यभवत् । ( सर्वाः प्रजा न्यायेन वर्तेरन्निति ) न व्यजानात् । तत् ( तस्मात्कारणात् ) श्रेयोरूप ( कल्याणकारणं ) धर्मं अत्यसृजत् । क्षत्रस्य क्षत्रम—क्षत्रियाणां क्षत्रिय. ( क्षत्रियाणामपि शास्ता ) धर्मः एव । न किमपि तस्मात् पर—श्रेष्ठमस्ति । वाव an explative particle. ऋतम्—सत्यम् । दीक्षा initiation. अनुपदम—प्रत्येकं पदे । नियमाः, यमाः—शरीरसाधनापेक्ष नित्य यत्कर्म तद्यमः । नियमस्तु

स यत्कर्म नित्यमागन्तुसाधनम ॥ ब्रह्मचर्य दया क्षान्तिर्दान सत्यमकल्पता ॥ अहिंसा स्तेयमाधुर्ये दमश्चेति यमा. स्मृता. ॥ चन्द्रा–दृढा–इति नपुंसकस्य वहुवचनानि ।

## चतुस्त्रिंशः पाठः ।

१ विलासी चासौ जन्तुश्च तस्य । ( क. ) प्रकृत्या समीरित –निसर्गेण प्रेपित प्रोत्साहितः वा ।

२. परम्–श्रेष्ठम् । यदनुक्तमपि ( अकथितमपि ) प्रियस्य साहचर्य न भजते तत्किं नाम पर मित्रम । अर्थात्पर मित्र सर्वदा प्रियस्य मित्रस्य साहचर्य भजते ।

३. श्रीखण्डशैलः ( मलयगिरि· ) द्युमणेः ( सूर्यस्य ) वियोगात् निश्वासकल्प ( निश्वाससदृशं ) पवन जहाति । जड –अलसः, बुद्धिहीन., मूर्खो वा । समीश.– सामर्थ्यवान् । वसन्ते सूर्यो दक्षिणायनादुत्तरायण गच्छति । अतो मलयाचलो वियोगदुःखान्निश्वसिति ।

५. कौवेरकाष्ठाम्–उदीची ( उत्तरां ) दिशम् । सूर्यस्य प्रचण्डतेजसः कारण–मुत्तरदिग्गमनमेव ।

६. को नाम सचेतनः प्रतिशात्रवं ( प्रतिस्पर्धित्व ) ग्रहीतु न समीहते ( इच्छति । )

७ हिमतीव्रशत्रुम–हिमस्य तीव्रः ( दृढः ) शत्रुः तम् । ( ष. त. )

८. वनस्थली–अकृत्रिमा वनभूमिः । श्रवणाभ्युपायैः–कर्णयोः उपहारैः ।

९ पडङ्घ्रयः–भ्रमरा· । कलम्–मधुरम् ।

१० समधूनि–मधुसहितानि ।

११ रमणीयताढ्य –रमणीयतया आढ्यः ( पूर्ण. । ) ( तृ. त. )

१२ सुपमाविभातम्–सुपमया ( सौन्दर्येण ) विभात ( प्रकाशितम् । ) ( तृ. त. ) धूमभङ्गयुक्तम–धूमसदृशैर्भृङ्गैर्युक्तम् । उच्चयः–समूह· ।

१३. नीरं ( जलं ), चुम्वतीति । मलयगिरिपवन. । चारु. वेशः यस्य सः । ( ष. व. )

# पञ्चत्रिंशः पाठः ।

१. धर्मात्मज.—धर्मस्य ( यमधर्मस्य ) आत्मज· ( पुत्र· ) युधिष्ठिरः । ( ष. त.) त्रिदशेन्द्रसूनु —त्रिदशेन्द्रस्य ( इन्द्रस्य ) सूनु· ( पुत्रः ) अर्जुनः । ( ष त. ) यमौ—twins, नकुलसहदेवौ ।

सदृशमेतद्गान्धारीपुत्रस्य—यथा गान्धारी स्वाक्षिणी पट्टकेन वद्ध्वा न किमपि पश्यति तथैवेष दुर्योधनो लोभान्धः तत्त्वानि न जानाति इत्यर्थ· । वाह्याभ्यन्तरे शरीरे—वाह्ये शरीरे अभ्यन्तरे शरीरे च ( मनसि इत्यर्थ. । )

२. दायाद्यम्—पितृरिक्थम् । ( ancestral property. )

३. एकदा पण्डुर्मृगयाप्रसङ्गतो वने विचरन् मृगरूपेण मृग्या सह क्रीडन्त कञ्चन मुनिं वाणेनाहन्। तदा स मुनि 'पत्नीविलासे त्वमपि मरिष्यसि' इति तं शशाप इति भारतीया कथा ।

पुराविद—पुरावृत्तज्ञम् ।

४. विषयी विषयासक्तः । विचित्रवीर्यः क्षयेण विपत्तिं यातः ( मृत. । ) तदा तस्य भार्यायामम्बिकाया व्यासेन जातः ( धृतराष्ट्रः ) ते जनक कथ राज्य लभेत इत्यन्वय. ।

६. सहृदय —with good heart. साहसं—युद्धम् । शान्तमतिभि. ( मुनिभि ) जुष्टं ( सेवित ) आश्रम शमाय ( शान्त्यर्थं ) ( ते पाण्डवा ) प्रविशन्तु ।

८ तव गुरो —पितुः ( वसुदेवस्य ) श्याल—पत्नीभ्रातरम् ।

१०. मगधेश्वर.—जरासन्ध. । नयानुगामिनाम्—नीतिमताम् ।

११. गुणेतराः—गुणा· इतरे ( अन्ये ) येभ्य· ते ( दोषा । ) ( पं. व )

१२ पिष्टपेषणम्—पिष्टस्यैव पेषणम् । ( grinding flour ) अत्र 'राज्य दीयताम्' इन्यर्थस्य पुन. पुनर्वचनम्। पर्याप्तम्—यथेप्सितम्। छिद्यता कथा—अस्मात् राज्ययाचनात् विरम्यताम्।

१४. कैरात—किरातस्य ( व्याधस्य ) इदं कैरात वपु. ( शरीर ) आस्थित ( आश्रितः ) पशुपतिः ( शङ्कर. ) युद्धेन ( युद्ध कृत्वा ) सन्तोषित । खाण्डवम्—तन्नामक वनम् । देवेन्द्रार्तिकराः—इन्द्र पीडयन्त· । निवातकवचा.—असुरविशेषाः ।

१५. चित्रसेन.—गन्धर्वविशेष. । फाल्गुनेन—अर्जुनेन । मोक्षितः—मोचितः ।

१६. गाम्—पृथिवीम् ।

१७ मारुत.—वायुदेव । भीमरूपी—भीमसेन । पितृभुक्ते—मम पित्रादिभिः उपभुक्ते । वीर्यगुप्ते—मम वीर्येण रक्षिते । तृणान्तराभिभाषका—तृणेन अन्तरं ( व्यवधान ) येषा ते तृणान्तरा.—तृणान्तराः च ते अभिभाषका· । ( It was an old custom in India that a low born man was addressed by a man of high birth after having kept a blade of grass between. )

१८. हयम्—अश्वरूप केशिनामानं असुरम् । गोवृषम्—अरिष्टर्षभदानवम् । मल्लान्—चाणूरादीन् ।

पशुखुरोद्धतरेणुरुषिताङ्गः—पशूना खुरैः उद्धता या रेणु तया रुषित ( चर्चित ) अङ्ग यस्य सः । ( ष. व. ) व्रज —गोपालाना वसतिस्थानम् ।

१९ अवधूतपाण्डरातपत्र·—अवधूत ( धूतं ) पाण्डरं ( शुभ्र ) आतपत्र ( आतपात् त्रायते इति । an umbrella ) यस्य स· । ( ष. व )

२०. काक·—कटुभाषित्वात् काक· । केकरः—squint-eyed, विकृताक्षः । पिङ्गल.—मर्कटः ।

२१. पशुपकुलनिवासात्—पशुपाना ( गोपालाना ) कुले निवास. तस्मात् । ( स त ) आनुजीव्यानभिज्ञ.—आनुजीव्य ( सेवकधर्म· )—तत्र अनभिज्ञः । ( ष. त )

मवितुकाम—मवितु ( वद्धु ) कामः ( इच्छा ) यस्य स । ( ष. व. ) माया—miracle, illusory feat जृम्भक—मायाविन् ।

## पट्त्रिंशः पाठः ।

( -रामचन्द्रेण सीताया स्वयवरप्रसङ्गे शिवधनुर्भग्नम् । तदा कोपाविष्टो जामदग्न्य तेन सह योद्धुमागच्छत् । तद्वर्णनम् । )

१. मौर्वी—धनुषो रज्जु । ( a grass string ) शिताग्रा —शित ( तीक्ष्ण ) अग्र येषा ते । ( ष व )

धारोज्ज्वल—धारया वा धारया वा ( at the edge ) उज्ज्वल ( दीप्त ) परशु । धारया ( जलस्य धारया ) उज्ज्वल ( कान्तिमान् ) कमण्डलुः । ( तृ त. ) तद् ( तस्मात् ) वीररसस्य शान्तरसस्य च विकार किमय इति विस्मय ।

क्रौञ्चमहीधरस्य—क्रौञ्चगिरे. शिखर विद्—छित्त्वम । हैहयपते ( कार्तवीर्यस्य ) उद्दामदोषः ( बलशालिभुजा ) तेपा कानन ( अरण्य ) छित्त्वम ।

२ इक्षुभञ्ज—इक्षोः भङ्ग इव इक्षुभञ्जम । बभञ्ज—चूर्णितवान् । रेणुकाकण्ठगवु—रेणुकाया· ( जमदग्नेः भार्याया ) कण्ठस्य गवु ( छेदक ) कुठार । ( प त ) इर्य—मयोक्ता 'समरविजयी भया' इति वाक् । समुदाचारानुसारिणी—शिष्टाचार-युक्ता । वाग्वृत्तिरेव—वचन एव । मम मनसि न तथा भाव इत्यर्थ ।

चण्डीशस्य ( शिवस्य ) कार्मुकविमर्दक ( धनुर्भङ्ग ) तस्माद् दर्प ( अहङ्कार ) तम् अनेन कठिनेन कुठारेण छिनद्मि । ( छिनद्मि । ) विग्रह—नाश । अनुग्रह—कृपा ।

३ पुरवैरिण—रुद्रस्य । आत्मनैवेद अभज्यत—स्वयमेवाभज्यत । चन्दन-दिग्धम—चन्दनेन दिग्ध ( लिप्तम । ) नागच्च बाण ।

प्रवीरो भव—उद्यतो भव ।

इह ( भूलोके ) ध्रुव ( निश्चल ) सुख अथवा प्रेतभर्तुः ( यमस्य ) सुखं समश्नुयाम ।

प्रणतिपात्रम—प्रणते ( नमस्कृते ) पात्रम ( योग्यम । ) ( प त ) तृणाय मन्यसे—तृणमिव अनादरणीय मन्यसे । क्षत्रकण्ठविगलदुष्णासृज—क्षत्राना ( क्षत्रि-याणा ) कण्ठात् विगलत यत उष्ण असृक् ( रुधिर ) तस्य । यथा जलाञ्जलिना पितृञ्जनास्तृपर्यन्ति, तथा अह तान् रुधिराञ्जलिना तर्पयित्वातोषयमिति भावार्थ । यशोवित्तम—यशोऽपि वित्तम । मुधा—व्यर्थम । वाग्डम्बरपण्डितेषु—वाचा ( वचनाना ) डम्बर. ( pomp, high sounding words ) तस्मिन् पण्डिता तेषु—युष्मासु । प्रचुरा ( प्रभूताः ) वाणी ( वचनानि । ) किं नाम प्रयुञ्जे ( किमर्थ योजयामि । ) पद्मासनम—पद्म आसन यस्य स, त, ब्रह्माणम् । ब्राह्मीम—ब्राह्मणसम्बन्धिनीम् । कुलिशकठिनम—कुलिशमिव ( वज्रवत् ) कठिनम् । त्रैयक्षम—त्र्यक्षस्य ( शकरस्य ) इद इति त्रैयक्षम । नारायणस्य इद नारायणीयम । दो ( भुजस्य ) विलास· ( लीला । ) चण्डधाम्न.—चण्ड धाम यस्य स, सूर्य । ( प. ब ) विद्योतसे—शोभसे ।

समरक्षमाम—रणयोग्याम् । क्षमाम्—भूप्रदेशम् ।

## सप्तत्रिंशः पाठः ।

अनूच्य–having taught; अध्याप्य । अन्तेवासिनम्–शिष्यम् । अनु (अध्ययनसमाप्तौ) शास्ति (उपदिशति ।) मा प्रमद–प्रमाद मा कुरु । प्रजातन्तु मा व्यवच्छेत्सी–प्रजोत्पादन कुरु इत्यर्थ. । भूत्यै–मङ्गलाय । मङ्गलार्थात् कर्मण सकशात् प्रमादः त्वया न कर्तव्य इत्यर्थ· । स्वाध्यायप्रवचनाभ्याम्–स्वाध्यायात् (अध्ययनात्) प्रवचनात् (अध्यापनात्) च । मातृदेवो भव–माता देवो यस्य स· । (ष व.) अनवद्यानि–अनिन्दितानि । प्रश्वसितव्यम्–श्रमापहार. कार्य. । श्रिया–औदार्येण, सगौरवम् । ह्रिया–लज्जया । भिया–भयेन । सविदा मित्रादिकार्यहेतुना । विकित्सा–सशयः । वृत्तविचिकित्सा–वृत्तौ (आचारे) विचिकित्सा (सशय.।) सम्मर्शिन.–विचारवन्त· । युक्ताः–अधिकारिण । (fit) आयुक्ता.–परे नियुक्ताः । अलूक्षा·–अरूक्षा· (अक्रूरमतय ।) आदेश·–विधि· (आज्ञा ।) वेदोपनिषत्–वेदरहस्यम् ।

## अष्टात्रिंशः पाठः ।

१. तदुदितम–तस्मिन् (वेदे) उदित (उक्तम् ।) स्वनुष्ठीयताम–सम्यक् अनुष्ठीयताम् (क्रियताम् ।) अपचिति–पूजा । काम्ये–काम्यकर्मणि । व्यवसीयताम्–निश्चीयताम् । तूर्णम्–झटिति ।

२. परिचीयताम्–वर्ध्यताम् । अर्थ्यताम्–याच्यताम । श्रुतिशिरोवाक्यम्–उपनिषद्वाक्यम् ।

३ श्रुतिशिरःपक्ष–श्रुतिशिर सु (उपनिषत्सु) स्वीकृत सस्थापितो वा पक्ष. (सिद्धान्तः) । अहरह.–प्रतिदिनम् ।

५. परतरे–परब्रह्मणि । चितिबलात्–चितेः ब्रह्मात्मैक्यविचारजनितानुभवस्य बलात् । उत्तरै–ज्ञानोत्तरैः कर्मभि. । श्लिष् to grasp, to stick to. प्रविलाप्–to let pass.

## नवत्रिंशः पाठः ।

सकलकुलाचलचक्रवर्तिना–सकलाश्च ते कुलाचलाश्च (महान्त· पर्वता.) (महेन्द्रो मलयः सह्य. शुक्तिमानृक्षपर्वत । विन्ध्यश्च परियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः ।) तेषा चक्रवर्तिना (सार्वभौमेन ।) पूर्वेद्यु.–पूर्वस्मिन् दिने ।

ओषधिप्रस्थवासिन – ओषधिप्रधानप्रस्थम् ( सानु ) तत्र वसन्तीति अथवा ओषधि प्रस्थ नाम हिमवतो राजधानी तत्र वासिन इत्यर्थं । परिष्कृंवताम्–अलङ्कुर्वताम्। मन्त्र-यन्ताम-चरन्ताम् । गगनलेलिह'–गगनतल लिहन्ति ( स्पृशन्ति ) इति । ( कृ यृ ) केतनानाम–ध्वजानाम । वीथय – रथ्या ( streets ) विश्रमाप्तत्यहेतु –श्रमनाश-कारणम । रम्भास्तम्भपरिष्कृतेषु–रम्भाणाम ( कदलीना ) स्तम्भा, तै परिष्कृतेषु ( अलङ्कृतेषु । ) ( तृ त ) आमन्द्रवनय –आमन्द्रा ( गम्भीर ) ध्वनय येषा ते । ( ष व ) मृद्नन्ति–विलाप कुर्वन्ते । गिरानं – ( sounding ) शब्दायमानं । अगरु –कृष्णचन्दनम । परभागि –परिमि । उत्तरम–उपरिवस्त्रम । शतमन्यु ( इन्द्र. ) तस्य शरासनम ( चाप. ) तस्य शोभा । भूरेव पद्मेर ( कमल ) तस्य कर्णिकायिता ( मध्यशोपायिता ) तनु यस्य । योक्त्रम–बन्धनरज्जु । भुजगराज – वासुकि । रथनेन–रथेन । भानुमालि ( सूर्य ) तस्य पदवी ( मार्ग ) तत्र जवाला ( जवयुक्ता ) ( speedy ) रथाना आलि ( पक्ति· ) यस्य स । ( ष व ) आनीयपानय –आनीयानि ( वाद्यानि ) पानीयु येषा ते । ( ष व ) उपवीणयितुम–वीणया गातुम ।

## चत्वारिंशः पाठः ।

१ जम्भारि –इन्द्र । परिनरेण–पर्यन्तन । ( near about ) वेवा – ध्राता । स्वन्ययनानि–स्वस्तिमृक्षाणि । रौद्रीम–रुद्रदेवतासम्बन्धिनीम् ( 'त्र्यम्बक यजामहे' इत्यादय । ) प्रष्ठा –अग्रगामिन ।

चतुरम–मनोज्ञम । प्रोन्नारणाया:–उन्नमन्मदूरीरणव्यापारस्य । अर्घ्य-पाणि –अर्घ्यं ( पूजाद्रव्य ) पाणौ–यस्य स । ( ब्य व )

२ अचामंगाना अचाम्–of sight not made of skin ( ज्ञानचक्षुषामित्यर्थं । ) अकर्तृणाम वचनाम–अपौरुषेयवाक्याना ( वेदवाक्याना-मित्यर्थं । )

३. अनिगुरुचरणकर्म heavy foot steps अवनमितोन्नमितस्थलाम् ननोन्नतस्थलाम् । ( with ups and downs )

नन्दित ( आनन्दित ) नयने एव चकोर· यस्या सा । ( ष व ) कौमुदी–ज्योत्स्ना । विमर्.–समूह: । उन्मूलयति–उत्कण्ठीकरोति।

आविर्मुकुला–प्रकटीभूतकुंड्मला । ( with buds shooting forth ) प्रस्विन्नं ( घर्मयुक्त ) यत् गण्डफलकम् ( कपोलफलक ) तस्मात् च्युता ( भ्रष्टा ) पत्रलेखा यस्मात् तत् । ( प व. ) धूमस्य अभिषङ्ग. ( सम्बन्ध· ) तस्मात् गलित अञ्जन यस्य तादृशम् । ( प व. ) पाटल अक्षि यस्मिन् तत् । ( स व. ) म्लायत्–fading वसन्तकुसुम–वसन्तोद्भव कुसुम यस्मिन् तत् । ( स व ) रागमुद्राम्–प्रेममुद्राम् ।

सवित्रो उत्पादकयो. । भुवनभयभङ्गदक्ष –भुवनस्य यद्भय तस्य भङ्गे ( नाशे ) दक्ष ( समर्थ । ) ( जगत्पालक इत्यर्थ । ) ( स त. )

# व्याकरणम् ।

## अभ्यासविचारः ।

| स्वरः । | विकारः । | उदाहरणम् । |
|---|---|---|
| अ अथवा आ | अ | या–यया । |
| | | चि–चिचि । |
| इ ,, ई | इ | नी–निनी । |
| उ ,, ऊ | उ | लू–लुलू । |
| ऋ ,, ॠ | अ | सृ–ससृ । |
| ए ,, ऐ | इ | खेल्–चिखेल् । |
| ओ ,, औ | उ | लोक्–लुलोक् । |

| व्यञ्जनम् । | विकारः । | उदाहरणम् । |
|---|---|---|
| क् अथवा ख् | च् | कृ–चकृ |
| | | खन्–चखन् । |
| ग् ,, घ् | ज् | गम्–जगम् । |
| | | घस्–जघस् । |
| च् ,, छ् | च् | चर्–चचर् । |
| | | छिद्–चिच्छिद् । |
| ज् ,, झ् | ज् | ज्वल्–जज्वल् । |
| ट् ,, ठ् | ट् | टीक्–टिटीक् । |
| ड् ,, ढ् | ड् | डी–डिडी । |
| त् ,, थ् | त् | तृ–ततृ । |
| द् ,, ध् | द् | दुह्–दुदुह् । |
| | | धा–दधा । |
| प् ,, फ् | प् | पत्–पपत् । |
| | | फल्–पफल् । |
| ब् ,, भ् | ब् | बध्–बबन्ध् । |
| | | भृ–बभृ । |

| व्यञ्जनम् । | विकारः । | उदाहरणम् । |
|---|---|---|
| न् अथवा म् | न्—ञ् | नम्—ननम् । |
| य् र् ल् व् श् ष् स् ह् | य् र् ल् व् श् ष् स् ज् | मुच्—मुमुच् । |
| | | या—यया । |
| | | रुच्—रुरुच् । |
| | | लस्—ललस् । |
| | | वृध्—ववृध् । |
| | | शस्—शशंस् । |
| | | सृज्—ससृज् । |
| | | हृ—जहृ । |
| सयुक्तव्यञ्जनम् । | प्रथमाक्षरम् | स्मृ—सस्मृ । |
| संयुक्तव्यञ्जनम् । (प्रथमाक्षरम् स, ष, श्, पश्चाच्च कठोरव्यञ्जनम्) | कठोरव्यञ्जनम् | दुह्—दुदुह् । |
| | | स्पृश्—पस्पृश् । |
| | | स्था—तस्था । |

(1) Reduplication means repeating, such as दा when reduplicated becomes ददा. in the reduplication of roots the initial vowel, and if there are more than one, the first together with the initial consonant are reduplicated ( as in roots of 3rd conjugation )

(2) The radical long vowel becomes short and the redical ऋ becomes अ in reduplication and the short of ए or ऐ is इ and that of ओ or औ is उ.

(3) The second letter in any of the five classes is changed to the first and the fourth to the third in reduplication

(4) The syllables in the कवर्ग are changed to the corresponding syllables in the चवर्ग, and ह् is changed to ज् in reduplication

(5) If a root begin with a conjunct consonant, the first member of it only with the vowel is reduplicated, but if the first member is श्, ष्, स् or ह् and the second a hard consonant, the hard consonant is reduplicated

## ( लिट् । ) द्वितीयभूतः । ( परोक्षभूतः । )–The Perfect tense.

| | बुध्—परस्मैपदम् । | | | | बुध्—आत्मनेपदम् । | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | ए० व० | द्वि० व० | ब० व० | | ए० व० | द्वि० व० | ब० व० |
| | बुबोध | बुबुधिव | बुबुधिम | प्र० पु० | बुबुधे | बुबुधिवहे | बुबुधिमहे |
| | बुबोधिथ | बुबुधथुः | बुबुध | द्वि० पु० | बुबुधिषे | बुबुधाथे | बुबुधिध्वे |
| | बुबोध | बुबुधतुः | बुबुधुः | तृ० पु० | बुबुधे | बुबुधाते | बुबुधिरे |

I In Perfect the first letter of a root is reduplicated, the reduplicative changes are shown at the beginning

| परस्मैपदम् । | | | आत्मनेपदम् । | | |
|---|---|---|---|---|---|
| (कृ) चकार | चक्रतुः | चक्रुः | (कृ) चक्रे | चक्राते | चक्रिरे |
| (वृ) ववार | वव्रतुः | वव्रुः | (वृ) वव्रे | वव्राते | वव्रिरे |
| (भृ) बभार | बभ्रतुः | बभ्रुः | (भृ) बभ्रे | बभ्राते | बभ्रिरे |
| (जि)-(गि) जिगाय | जिग्यतुः | जिग्युः | | | |
| (नी) निनाय | निन्यतुः | निन्युः | (नी) निन्ये | निन्याते | निन्यिरे |
| (चि-(चि-कि) चिचाय | चिच्यतुः | चिच्युः | (चि)-(चि-कि) चिच्ये | चिच्याते | चिच्यिरे |
| चिकाय | चिक्यतुः | चिक्युः | चिक्ये | चिक्याते | चिक्यिरे |
| (दिश्) दिदेश | दिदिशतुः | दिदिशुः | (दिश्) दिदिशे | दिदिशाते | दिदिशिरे |
| (द्विष्) दिदेष | दिद्विषतुः | दिद्विषुः | (द्विष्) दिद्विषे | दिद्विषाते | दिद्विषिरे |
| (क्षिप्) चिक्षेप | चिक्षिपतुः | चिक्षिपुः | (क्षिप्) चिक्षिपे | चिक्षिपाते | चिक्षिपिरे |
| (भिद्) विभेद | विभिदतुः | विभिदुः | (भिद्) विभिदे | विभिदाते | विभिदिरे |
| (विश्) विवेश | विविशतुः | विविशुः | (विद्) विविदे | विविदाते | विविदिरे |
| (छिद्) चिच्छेद | चिच्छिदतुः | चिच्छिदुः | (रुच्) रुरुचे | रुरुचाते | रुरुचिरे |
| (मुच्) मुमोच | मुमुचतुः | मुमुचुः | (मुच्) मुमुचे | मुमुचाते | मुमुचिरे |
| (त्रुट्) तुत्रोट | तुत्रुटतुः | तुत्रुटुः | (युध्) युयुधे | युयुधाते | युयुधिरे |
| (मुह्) मुमोह | मुमुहतुः | मुमुहुः | (वृत्) ववृते | ववृताते | ववृतिरे |

---

| परस्मैपदीयाः प्रत्ययाः । | | | आत्मनेपदीयाः प्रत्ययाः । | | |
|---|---|---|---|---|---|
| ए० व० | द्वि० व० | ब० व० | ए० व० | द्वि० व० | ब० व० |
| अ | व | म | प्र० पु० | | |
| थ | अथुस् | अ | द्वि० पु० | से | आथे ध्वे |
| अ | अतुस् | उस् | तृ० पु० | ए | आते इरे |

The underlined terminations in the above are strong ( पित् ) and the rest are weak ( अपित् )

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| (कृप्) | चकर्प | चकृपतुः | चकृपुः | (कृप्) | चकृपे | चकृपाते | चकृपिरे |
| (नृत्) | ननर्त | ननृततुः | ननृतुः | (वृध्) | ववृधे | ववृधाते | ववृधिरे |
| (स्पृश्) | पस्पर्श | पस्पृशतुः | पस्पृशुः | (ग्रह्) | जगृहे | जगृहाते | जगृहिरे |
| (दृश्) | ददर्श | ददृशतुः | ददृशुः | (क्लृप्) | चक्लृपे | चक्लृपाते | चक्लृपिरे |

1. The final vowel and the उपान्त्य अ of roots take वृद्धि before the अ of the third person singular. The उपान्त्य short vowel takes its गुण substitute before अ.

2 Before a weak termination the final इ or ई is changed to य, only when it is preceded by a simple consonant and when the base consists of more than one syllable

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| (प्री) | पिप्राय | पिप्रियतुः | पिप्रियुः | (प्री) | पिप्रिये | पिप्रियाते | पिप्रियिरे |
| (सु) | सुषाव | सुष्वतुः | सुष्वुः | (सु) | सुष्वे | सुष्वाते | सुष्विरे |
| (स्तु) | तुष्टाव | तुष्ट्वतुः | तुष्ट्वुः | (स्तु) | तुष्ट्वे | तुष्ट्वाते | तुष्ट्विरे |
| (श्रु) | शुश्राव | शुश्रुवतुः | शुश्रुवुः | (श्रु) | शुश्रुवे | शुश्रुवाते | शुश्रुविरे |
| (श्वि) | शिश्वाय | शिश्वियतुः | शिश्वियुः | (स्मि) | सिष्मिये | सिष्मियाते | सिष्मियिरे |
| (श्नि)-(शु) | शुशाव | शुशुवतुः | शुशुवुः | | | | |
| (श्रि) | शिश्राय | शिश्रियतुः | शिश्रियुः | (श्रि) | शिश्रिये | शिश्रियाते | शिश्रियिरे |
| (धु) | दुधाव | दुधुवतुः | दुधुवुः | | | | |
| (ह्वे)-(हु) | जुहाव | जुहुवतुः | जुहुवुः | (ह्वे)-(हु) | जुहुवे | जुहुवाते | जुहुविरे |

The ending इ, ई or उ, ऊ are changed to इव् or उव् when followed by a weak termination beginning with a vowel

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| (उख्) | उवोख | ऊखतुः | ऊखुः | (इष्) | इयेष | ईषतुः | ईषुः |
| (इ) | इयाय | ईयतुः | ईयुः | | | | |

1 The reduplicative इ is changed to इय् and उ to उव् when followed by a dissimilar vowel and when they do not, the two vowels combine and become ई or ऊ.

2 The reduplicative इ of इ ( to go ) is lengthened before weak terminations of the perfect and the reduplicated इ is then changed to य् before weak terminations beginning with a vowel

ट + उख् + अ = ट + ओख्+अ= उव् + ओख् + अ = उवोख ।
इ् + इ् + अ = इ् + ऐ् + अ = इय् + आय् + अ = इयाय ।
इ् + इ् + अतुस् = ईं + इ् + अतुस् = ईं + यतुस् = ईयतुः ।

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| (धा) | दधौ | दधतु· | दधु· | (धा) | दधे | दधाते | दधिरे |
| (दा) | ददौ | ददतुः | ददु· | (दा) | ददे· | ददाते | ददिरे |
| (ज्ञा) | जज्ञौ | जज्ञतु· | जज्ञुः | (जन्)-(ज्ञा) | जज्ञे | जज्ञाते | जज्ञिरे |
| (पा) | पपौ | पपतुः | पपु· | | | | |
| (मा) | ममौ | ममतु· | ममु· | (अधि+इ)–(अधि+गा) | | | |
| | | | | अधिजगे | अधिजगाते | अधिजगिरे | |
| (हा) | जहौ | जहतुः | जहु· | (हा) | जहे | जहाते | जहिरे |
| (स्था) | तस्थौ | तस्थतुः | तस्थुः | (स्था) | तस्थे | तस्थाते | तस्थिरे |
| (ग्लै) | जग्लौ | जग्लतुः | जग्लुः | (प्यै) | पप्ये | पप्याते | पप्यिरे |
| (ध्मै) | दध्मौ | दध्मतुः | दध्मु· | | | | |
| (ख्या) | चख्यौ | चख्यतु· | चख्युः | (ख्या) | चख्ये | चख्याते | चख्यिरे |
| (चक्ष्) | चक्षौ | चक्षतु· | चक्षु· | | चक्षे | चक्षाते | चक्षिरे । |
| | | | | | चचक्षे | चचक्षाते | चचक्षिरे । |

( आ becomes उभयपदी in the perfect )

1 Roots ending in आ drop their final vowel before a termination beginning with a vowel

2 The termination अ of the singulars in perfect is changed to औ when applied to roots ending in आ

3 The final ऋ, ॠ and औ of roots are replaced by आ in Perfect.

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| (स्तॄ) | तस्तार | तस्तरतु | तस्तरु· | (स्तॄ) | तस्तरे | तस्तराते | तस्तरिरे |
| (गॄ) | जगार | जगरतुः | जगरु· | (स्तॄ) | ,, | ,, | ,, |
| (स्मॄ) | मस्मार | मस्मरतु· | मस्मरु· | (ऋ) | आर | आरतु | आरु· |
| (स्वॄ) | मस्वार | मस्वरतुः | मस्वरु· | (जागृ) | जजागार | जजागरतु· | जजागरु· |

1. Roots ending in long ऋ and the roots स्मृ, स्वृ, स्तृ, जागृ and ऋ first take गुण and then the reduplication

| | | | |
|---|---|---|---|
| (पॄ) | पपार | पपरतु·-पप्रतु· | पपरु·-पप्रु· |
| (दॄ) | ददार | ददरतुः-दद्रतुः | ददरु·-दद्रुः |

1 Roots गॄ, दॄ and पॄ take गुण optionally before the weak terminations of the Perfect.

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| Exception—(भू)-(बभूव्) | बभूव | बभूवतुः | बभूवुः |
| (गम्) | जगाम | जग्मतुः | जग्मुः |
| (हन्) | जघान | जघ्नतुः | जघ्नुः |
| (खन्) | चखान | चख्नतुः | चख्नुः |
| (अद्) | आद | आदतुः | आदुः |
| (अद्)-(घस्) | जघास | जक्षतुः | जक्षुः |

1. The उपान्त्य अ of गम्, हन्, खन् and घस् is dropped before weak terminations of the Perfect

2 ह becomes घ throughout and घस् after dropping अ becomes जक्ष्. घस् is optionally conjugated for अद्.

3. The roots अस् and ब्रू have no form in Perfect but भू and वच् are respectively conjugated instead

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| (अर्द्) | आनर्द | आनर्दतुः | आनर्दुः | (ऋज्) | आनृजे | आनृजाते | आनृजिरे |
| (अन्त्) | आनन्त | आनन्ततुः | आनन्तुः | (ऋध्) | आनर्ध | आनर्धतुः | आनर्धुः |
| (अर्च्) | आनर्च | आनर्चतुः | आनर्चुः | (अश्) | आनशे | आनशाते | आनशिरे |
| (अर्ह्) | आनर्ह | आनर्हतुः | आनर्हुः | | | | |

1 If the reduplicative syllable consist of अ only the अ is lengthened

2 Roots beginning with अ and ending with a double consonant and those with an initial ऋ and the root अश्, 5 A insert न् after the reduplicative syllable

(स्वञ्ज्) सस्वञ्जे सस्वञ्जाते सस्वञ्जिरे । सस्वजे सस्वजाते सस्वजिरे ।

1. स्वञ्ज् drops its nasal optionally in Perfect

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| (तन्) | ततान | तेनतुः | तेनुः | (तन्) | तेने | तेनाते | तेनिरे |
| (नद्) | ननाद | नेदतुः | नेदुः | (रभ्) | रेभे | रेभाते | रेभिरे |
| (मद्) | ममाद | मेदतुः | मदुः | (मन्) | मेने | मेनाते | मेनिरे |
| (चर्) | चचार | चेरतुः | चेरुः | (यत्) | येते | येताते | येतिरे |
| (शम्) | शशाम | शेमतुः | शेमुः | (सह्) | सेहे | सेहाते | सेहिरे |

1 When a root has an अ between two simple consonants and the first consonant unchangeable in the reduplication, the अ is replaced by ए and the reduplicative syllable dropped before weak terminations

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| (तॄ) | ततार | तेरतुः | तेरुः | (त्रप्) | त्रेपे | त्रेपाते | त्रेपिरे |
| (फल्) | पफाल | फेलतुः | फेलुः | (राध्) | ररास | रेधतुः | रेधुः |
| (मज्) | बभाज | भेजतुः | भेजुः | | | | |

These roots necessarily follow the above rule.

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| (जॄ) | जजार | जजरतुः / जेरतुः | जजरुः / जेरुः | (भ्राज्) | बभ्राजे / भ्रेजे | बभ्राजाते / भ्रेजाते | बभ्राजिरे / भ्रेजिरे |
| (भ्रम्) | बभ्राम | बभ्रमतुः / भ्रेमतुः | बभ्रमुः / भ्रेमुः | In the same way भ्राज्, भ्राश्, भ्लाश्, भ्लाज्, | | | |
| (राज्) | रराज् | रराजतुः / रेजतुः | रराजुः / रेजुः | (त्रस्) | तत्रास | तत्रसतुः / त्रेसतुः | तत्रसुः / त्रेसुः |
| (स्वन्) | सस्वान | सस्वनतुः / स्वेनतुः | सस्वनुः / स्वेनुः | | | | |

These roots follow the above rule optionally

(वम्) ववाम ववमतुः ववमुः। (शस्) शशास शशसतुः शशसुः

1. Roots beginning with व् and the roots शस् and दद् do not undergo the changes mentioned above.

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| (वप्) | उवाप | ऊपतुः | ऊपुः | (वप्) | ऊपे | ऊपाते | ऊपिरे |
| (वच्) | उवाच | ऊचतुः | ऊचुः | (वच्) | ऊचे | ऊचाते | ऊचिरे |

(वच् is उभयपदी in Perfect )

| | | | |
|---|---|---|---|
| (वस्) | उवास | ऊषतुः | ऊषुः |
| (स्वप्) | सुष्वाप | सुषुपतुः | सुषुपुः |

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| (वह्) | उवाह | ऊहतुः | ऊहुः | (वह्) | ऊहे | ऊहाते | ऊहिरे |
| (वद्) | उवाद | ऊदतुः | ऊदुः | (वद्) | ऊदे | ऊदाते | ऊदिरे |
| (वश्) | उवाश | ऊशतुः | ऊशुः | | | | |
| (वे) | उवाय | ऊवतुः-ऊयतुः | ऊवुः-ऊयुः | (वे) | ऊये-ऊवे | ऊयाते-ऊवाते | ऊयिरे-ऊविरे |
| (वे) | ववौ | ववतुः | ववुः | (वे) | वव्रे | वव्राते | वव्रिरे |
| (व्ये) | विव्याय | विव्यतुः | विव्युः | (व्ये) | विव्ये | विव्याते | विव्यिरे |
| (व्यच्) | विव्याच | विविचतुः | विविचुः | | | | |
| (व्यध्) | विव्याध | विविधतुः | विविधुः | | | | |
| (यज्) | इयाज | ईजतुः | ईजुः | (यज्) | ईजे | ईजाते | ईजिरे |
| (ग्रह्) | जग्राह | जगृहतुः | जगृहुः | (ग्रह्) | जगृहे | जगृहाते | जगृहिरे |

1. The above roots change their यू, व् and र् to इ, उ. and ऋ respectively. This change is called संप्रसारण.

2. Before strong terminations संप्रसारण takes place in the reduplicative syllable only

3 The vowel following a संप्रसारण is dropped.

4 When two members of a conjunct consonant are capable of taking संप्रसारण the second one only takes it. *Cf.* ब्यध् and ब्यच्.

5 वे and श्वि are conjugated in the ordinary way i. e. without undergoing the संप्रसारण change.

| | | | |
|---|---|---|---|
| (चुर्) | चोरयाञ्चकार | चोरयाञ्चक्रतुः | चोरयाञ्चक्रुः |
| | चोरयामास | चोरयामासतुः | चोरयामासुः |
| | चोरयाम्बभूव | चोरयाम्बभूवतुः | चोरयाम्बभूवुः |
| | चोरयाञ्चक्रे | चोरयाञ्चक्राते | चोरयाञ्चक्रिरे |
| (ऊह्) | ऊहाञ्चकार-मास-म्बभूव | ऊहाञ्चक्रतुः—मासतुः—म्बभूवतुः | ऊहाञ्चक्रुः—मासुः—म्बभूवुः |
| (उच्छ्) | उच्छाञ्चकार | उच्छाञ्चक्रतुः | उच्छाञ्चक्रुः |
| (ईर्ष्य्) | ईर्ष्याञ्चकार | ईर्ष्याञ्चक्रतुः | ईर्ष्याञ्चक्रुः |
| (चकास्) | चकासाञ्चकार | चकासाञ्चक्रतुः | चकासाञ्चक्रुः |
| (दरिद्रा) | दरिद्राञ्चकार | दरिद्राञ्चक्रतुः | दरिद्राञ्चक्रुः |
| | also ददरिद्रौ | ददरिद्रतुः | ददरिद्रुः |
| (तुल्) | तोल्याञ्चकार | तोल्याञ्चक्रतुः | तोल्याञ्चक्रुः |

1 Roots beginning with a long vowel and roots having more than one syllable and those of the 10th conjugation, causal, desiderative and other derived roots take Periphrastic Perfect.

2 The Periphrastic Perfect is formed by adding आम् to the root and then appending the forms of the reduplicative perfect of कृ, भू or अस्.

3 आम् is a strong termination.

4. The अय् of the 10th conjugation is retained in the periphrastic perfect

(दय्) दयाञ्चक्रे दयाञ्चक्राते दयाञ्चक्रिरे

Similarly are conjugated अय्, आस् and कास् ( all Atm ) which take the periphrastic perfect necessarily

(उप्) ओपाञ्चकार–उवोप

(विद्) विदाञ्चकार–विवेद–( Here the उपान्त्य इ does not take गुण. )

(जागृ) जागराञ्चकार–जजागार

1. ( These three roots take the periphrastic perfect optionally )

(भी) विभयाञ्चकार–विभाय। (ह्री) जिह्रयाञ्चकार–जिह्राय

(भृ) विभराञ्चकार–बभार। (ह्रु) जुह्रवाञ्चकार–जुह्राव

1 ( These four roots take the periphrastic perfect optionally and when they do, they undergo all the reduplicative changes )

(कम्) कामयाञ्चक्रे–चकमे

1. कम् takes the periphrastic perfect optionally and the उपान्त्य अ takes वृद्धि.

Exceptions—( रध् ) ररन्ध ररन्धतुः ररन्धु·

रध् becomes रन्ध् before a vowel in the Perfect.

(गुह्) जुगूह जुगुहतुः जुगुहुः (गुह्) जुगुहे जुगुहाते जुगुहिरे

गुह् becomes गूह् before a strong termination beginning with a vowel

(मृज्) ममार्ज ममृजतुः-ममार्जतु· ममृजुः-ममार्जुः

मृज् becomes मार्ज् necessarily before strong terminations and optionally before weak terminations

The passive of the perfect is formed by adding the आत्मनेपद् terminations to the base whether the root is परस्मैपदी or आत्मनेपदी.

The Perfect shows that the action took place at a very remote time and that it was not witnessed by the speaker. In the first person it shows something done by the speaker of which he was unconscious or that it was performed without his right cognizance or which he wants to hide by affirming the opposite.

( प्रथमपुरुषे चित्तभ्रमादिना परोक्षता भवति। अत्यन्तापवह्नेऽपि लिट् भवति। )

# संख्याविशेषणानि

| संख्यावाचकानि | | क्रमवाचकानि (पु० न०) | (स्त्री०) |
|---|---|---|---|
| १ | एक | प्रथम, अग्रिम, आदिम | प्रथमा |
| २ | द्वि | द्वितीय | द्वितीया |
| ३ | त्रि | तृतीय | तृतीया |
| ४ | चतुर् | चतुर्थ-तुर्य-तुरीय | चतुर्थी-तुरीया |
| ५ | पञ्चन् | पञ्चम | पञ्चमी |
| ६ | षष् | षष्ठ | षष्ठी |
| ७ | सप्तन् | सप्तम | सप्तमी |
| ८ | अष्टन् | अष्टम | अष्टमी |
| ९ | नवन् | नवम | नवमी |
| १० | दशन् | दशम | दशमी |
| ११ | एकादशन् | एकादश | एकादशी |
| १२ | द्वादशन् | द्वादश | द्वादशी |
| १३ | त्रयोदशन् | त्रयोदश | त्रयोदशी |
| १४ | चतुर्दशन् | चतुर्दश | चतुर्दशी |
| १५ | पञ्चदशन् | पञ्चदश | पञ्चदशी |
| १६ | षोडशन् | षोडश | षोडशी |
| १७ | सप्तदशन् | सप्तदश | सप्तदशी |
| १८ | अष्टादशन् | अष्टादश | अष्टादशी |
| १९ | नवदशन् | नवदश | नवदशी |
| | एकोनविंशति | एकोनविंश-एकोनविंशतितम | °शी-°तमी |
| | एकान्नविंशति | एकान्नविंश-एकान्नविंशतितम | °शी-°तमी |
| | ऊनविंशति | ऊनविंश-ऊनविंशतितम | ,, —,, |
| २० | विंशति | विंश-विंशतितम | ,, —,, |

The cardinal numbers between विंशति and त्रिंशत्, त्रिशत्, and चत्वारिंशत्, and so on are made up by prefixing एक, द्वि etc upto नवन् to the lower The ninth intermediate number is also made up by prefixing एकोन, ऊन or एकान्न to the higher The numbers from 21 to 29 are given below:—

२१ एकविंशति, २२ द्वाविंशति, २३ त्रयोविंशति, २४ चतुर्विंशति,
२५ पञ्चविंशति, २६ षड्विंशति, २७ सप्तविंशति, २८ अष्टाविंशति,
२९ नवविंशति or एकोनत्रिंशत् or एकान्नत्रिंशत् or ऊनत्रिंशत्.

1 All Sandhi rules are observed in making these compounds.

2 The final न् is invariably dropped

3 द्वि becomes द्वा, त्रि—त्रय and अष्टन्—अष्टा everywhere except in the case of चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्, षष्टि, सप्तति and नवति where these changes are optional e g द्वि or द्वाचत्वारिंशत्, त्रि or त्रयश्चत्वारिंशत्; अष्ट or अष्टाचत्वारिंशत्. In the case of अशीति no change is made e g. द्व्यशीति, त्र्यशीति, अष्टाशीति only.

| संख्यावाचकानि । | क्रमवाचकानि (पुं न ) | (स्त्री.) |
|---|---|---|
| ३० त्रिंशत् | त्रिंश-त्रिंशत्तम | त्रिंशी—त्रिंशत्तमी |
| ४० चत्वारिंशत् | चत्वारिंश-चत्वारिंशत्तम | °शी—°मी |
| ५० पञ्चाशत् | पञ्चाश-पञ्चाशत्तम | ,, ,, |
| ६० षष्टि | षष्टितम | षष्टितमी |
| ७० सप्तति | सप्ततितम | सप्ततितमी |
| ८० अशीति | अशीतितम | अशीतितमी |
| ९० नवति | नवतितम | नवतितमी |
| १०० शतम् | शततम | शततमी |

The ordinals of 60, 70, 80, and 90 are formed by adding तम only, but those of the intermediate numbers are optionally formed by dropping the final vowel and adding अ e. g. (६१) एकषष्टितमः or एकषष्टः

२०० द्विशतम्, ३०० त्रिशतम्, १००० सहस्रम्, १०,००० अयुतम्,
१००,००० लक्षम् (*fem.* लक्षा).

एकदशशतसहस्रायुतलक्षप्रयुतकोटयः क्रमशः ।
अर्बुदमब्जं खर्वनिखर्वमहापद्मशङ्कवस्तस्मात्
जलधिश्चान्तं मध्य परार्धमिति दशगुणोत्तराः सञ्ज्ञाः ।
संख्यायाः स्थानानां व्यवहारार्थं कृताः पूर्वैः ।

११२ द्वादशाधिकं शत or द्वादशाधिकशतम् ।
१८९२ द्वि or द्वानवत्यधिकाष्टशताधिकसहस्रम् ।
१७७६३९ एकोनचत्वारिंशदधिकषट्शताधिकसप्तसप्ततिसहस्राधिकं लक्षम् ।
७५४ चतुःपञ्चाशदुत्तरं सप्तशतम् ।

1 The cardinal numbers are expressed by means of अधिक or उत्तर added to the number showing the excess, the अधिक or उत्तर may be repeated with every multiple of ten or hundred

2 विंशति and other cardinal numbers upto नवनवति are all feminine substantives and are declined as such Numbers शत, सहस्र and others are neuter with the exception of लक्ष ( *mas & fem* ) कोटि ( *fem* ) and शङ्कु and जलधि ( *mas* ) All these are declined in singulars and may be used with plural nouns, e g. पञ्चविंशतिर्ब्राह्मणाः । एकादशोत्तरेण शतेन नरैः or स्त्रीभिः; but they may be made to have duals and plurals when used as fixed standards of counting e.g ब्राह्मणानां विंशतय many twenties of Brahmanas, द्वे शते नारीणाम् ।

1 The declension of cardinals from एक to नवन् is given on page 143 of द्वितीया अभिनवा पाठावलिः ।

2 Upto नवदशन् the cardinals are adjectives; i e they take the number and the case of the nouns to which they are applied

3 प्रथम, द्वितीय, तृतीय are optionally declined like pronouns. All other ordinals are regular in declension.

## संख्यावाचकानि क्रियाविशेषणानि ।

Once सकृत् ।
Twice द्वि ।
Thrice त्रिः ।
Four times चतु ।
Five times पञ्चकृत्वः ।

Seven times सप्तकृत्वः ।
Fifty times पञ्चाशत्कृत्वः ।

कृत्वस् is added to cardinals from पञ्चन् onwards to show frequency

In one way एकधा ।
In two ways द्विधा—द्वेधा—द्वैधम् ।
In three ways त्रिधा—त्रेधा—त्रैधम् ।
In four ways चतुर्धा ।
In five ways पञ्चधा ।
In six ways षोढा—षड्धा ।
धा is added to cardinals to show the frequency of manner.
Singly—one by one एकशः ।
Two by two द्विशः ।
Collection of four चतुष्टय ।
Collection of five पञ्चनय or पञ्चन् ।
Twofold द्वय-द्वितय ।
Threefold त्रय-त्रितय ।
Collection of ten दशन् ।

The affix तय is added to numerals showing collection, as also क and अत् e. g पट्क, पञ्चन, दशन् ।

---

## तरतमवाचकानि विशेषणानि ।

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| गुरु — | Comparative | गुरुतर — | Superlative | गुरुतम |
| महत्— | ,, | महत्तर — | ,, | महत्तम |
| शुचि— | ,, | शुचितर— | ,, | शुचितम |
| प्रिय — | ,, | प्रियतर — | ,, | प्रियतम |

The Comparative and Superlative degrees of adjectives are formed by the addition to their masculine base the suffix तर ( तरा *fem* ) and तम ( तमा *fem.* )

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| विश्वजित्—Comparative | | विश्वजित्तर | — | Superlative | विश्वजित्तम |
| सत्यवाच्— | ,, | सत्यवाक्तर | — | ,, | सत्यवाक्तम |
| धनिन् — | ,, | धनितर | — | ,, | धनितम |
| उदर्चिस्— | ,, | उदर्चिष्टर | — | ,, | उदर्चिष्टम |

Adjectives change their final consonants before तर and तम as they change it before the neuter singular termination

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| धीमत् — | Comparative | धीमत्तर | — | Superlative | धीमत्तम |
| विद्वस् — | ,, | विद्वत्तर | — | ,, | विद्वत्तम |

These adjectives undergo all the changes before तर and तम as they would before the locative plural termination सु.

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| पचति — | Comparative | पचतितराम् — | | Superlative | पचतितमाम् |
| उच्चैः — | ,, | उच्चैस्तराम् — | | ,, | उच्चैस्तमाम् |
| सु — | ,, | सुतराम् — | | ,, | सुतमाम् |
| जल्पति — | ,, | जल्पतितराम्— | | ,, | जल्पतितमाम् |

The suffixes तराम् and तमाम् are added to verbs and to indeclinables which remain indeclinables with तराम् and तमाम् added to them but if an indeclinable is changed into an adjective after the addition of the Comparative and Superlative suffixes then they are तर and तम e g. उच्चैस्तमः तरुः ।

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| अल्प —Comparative | | अल्पीयस् — | | Superlative | अल्पिष्ठ |
| लघु — | ,, | लघीयस् — | | ,, | लघिष्ठ |
| महत् — | ,, | महीयस् — | | ,, | महिष्ठ |
| मृदु — | ,, | म्रदीयस् — | | ,, | म्रदिष्ठ |
| क्षिप्र — | ,, | क्षेपीयस् — | | ,, | क्षेपिष्ठ |
| स्थिर — | ,, | स्थेयस् — | | ,, | स्थेष्ठ |
| ऊरु — | ,, | वरीयस् — | | ,, | वरिष्ठ |

1 Qualitative adjectives take the suffixes ईयस् ( ईयसी *fem.* ) and इष्ठ ( इष्ठा *fem.* ) to show Comparative and Superlative degrees optionally

2 Before ईयस् and इष्ठ (*a*) The final vowel is dropped

(*b*) The final consonant is dropped

(*c*) An adjective beginning with a consonant and having ऋ in it, changes the ऋ to र e. g मृदु-म्रदीयस्; but ऋजु—ऋजीयस्—ऋजिष्ठ.

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| बलिन् | — Comparative | बलीयस् | — | Superlative | बलिष्ठ |
| मतिमत् | — ,, | मतीयस् | — | ,, | मतिष्ठ |
| मेधाविन् | — ,, | मेधीयस् | — | ,, | मेधिष्ठ |
| वसुमत् | — ,, | वसीयस् | — | ,, | वसिष्ठ |

When ईयस् and इष्ठ are added to adjectives formed from nouns the suffixes मत्, वत्, इन्, विन् are dropped and the remainder of the base drops its final vowel

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| पापीयस् | — comparative | पापीयस्तर | — | superlative | पापीयस्तम |
| श्रेष्ठ | — ,, | श्रेष्ठतर | — | ,, | श्रेष्ठतम |

तर and तम are sometimes added to Comparatives and Superlatives in ईयस् and इष्ठ.

There are many irregular forms of Comparative and Superlative degrees. Some of them are noted below.—

| | | | |
|---|---|---|---|
| अन्तिक | Near | नेदीयस् | नेदिष्ठ |
| अल्प | Small | अल्पीयस् | अल्पिष्ठ |
| | | कनीयस् | कनिष्ठ |
| क्षुद्र | Mean | क्षोदीयस् | क्षोदिष्ठ |
| गुरु | Heavy | गरीयस् | गरिष्ठ |
| दीर्घ | Long | द्राघीयस् | द्राघीष्ठ |
| दूर | Far | दवीयस् | दविष्ठ |
| प्रशस्य | Praiseworthy | श्रेयस् | श्रेष्ठ |
| | | ज्यायस् | ज्येष्ठ |
| प्रिय | Dear | प्रेयस् | प्रेष्ठ |
| बहु | Much | भूयस् | भूयिष्ठ |
| बहुल | Manifold | बंहीयस् | बंहिष्ठ |

| | | | |
|---|---|---|---|
| युवन् | Young | यवीयस् | यविष्ठ |
| | | कनियस् | कनिष्ठ |
| बाढ | Firm | साधीयस् | साधिष्ठ |
| वृद्ध | Old | वर्षीयस् | वर्षिष्ठ |
| | | ज्यायस् | ज्येष्ठ |
| बृन्दारक | Great | बृन्दीयस् | बृन्दिष्ठ |
| स्थूल | Great | स्थवीयस् | स्थविष्ठ |
| स्फिर | Large | स्फेयस् | स्फेष्ठ |
| ऱ्हस्व | Short | ऱ्हसीयस् | ऱ्हसिष्ठ |

---

## नामधातुः ( Denominatives )

| | | |
|---|---|---|
| पुत्रीयति | स्वामीयति | यशस्काम्यति |
| मालीयति | दात्रीयति | प्रासादीयति |
| राजीयति | पुत्रकाम्यति | समिध्यति |

1 The above forms are derived from nominal bases such as पुत्र, माला, राजन्, स्वामिन्, सामिध् with the addition of the suffix य ( क्यच् ) or काम्य.

2 Before this य (क्यच्) (*a*) The final अ or आ is changed to ई.

(*b*) The final इ or उ is lengthened

(*c*) The final ऋ is changed to री

(*d*) The final ओ or औ is changed to अव् and आव् respectively. *Cf* गो—गव्य; नौ—नाव्य.

(*e*) The final nasal is dropped and the preceding vowel is changed as shown in the above rules.

(*f*) The other final consonants remain unchanged

3. These verbs derived from nouns show that a person wishes for that, or treats a person or thing like that which is

expressed by the nouns, e g पुत्रीयति or पुत्रकाम्यति—आत्मन' पुत्रमिच्छति, or पुत्रमिवाचरति; प्रासादीयति—प्रासादे इवाचरति etc.

4 All these verbs take the परस्मैपदी terminations and should be considered as verbs of the first conjugation

| | | |
|---|---|---|
| कृष्णायते | जलायते | ओजायते |
| अप्सरायते | सपत्नायते सपतीयते, सपत्नीयते, | युवायते |
| कुमारायते | अग्नीयते | कालिदासायते |

5. These forms are derived by adding य (क्यङ्) to nominal bases and by conjugating them in the Atmanaipada.

6 These verbs show that the person or the thing is behaving like that which is expressed by the nominal base *Cf.* कृष्णायते—कृष्ण इवाचरति ।

7 Before this य (क्यङ्) (*a*) The final अ is lengthened.

(*b*) आ remains unchanged

(*c*) The other final letters undergo the changes given under (क्यच्) य rules.

(*d*) If this य is added to a feminine base the corresponding masculine base is substituted for the feminine one e.g. कुमारायते—कुमारी इव आचरति ।

| | | |
|---|---|---|
| वाष्पायते | शब्दायते | कलहायते |
| दुःखायते | वैरायते | सुखायते |

8. Here the verbs show a different meaning e g वाष्पायते—He sheds tears, शब्दायते—He makes a sound, दुःखायंते—He suffers pain, etc.

| | | |
|---|---|---|
| पण्डितायते | मन्दायते | मृशायते |
| शीघ्रायते | जन्मायते | चपलायते |

9 Here the verbs show that the person or the thing wants to become like that which is expressed by the nominal base e. g पण्डितायते—न पण्डितः अपण्डितः, अपण्डितः पण्डितः इव भवति इति पण्डितायते ।

आविलयति  द्रढयति

लघयति  मिश्रयति

10 Here the verbs show that the person or the thing does that which is expressed by the nominal base e. g. आविलयति—आविल करोति ।

11 Here the suffix is इ ( णिच् ) and the roots are conjugated like the roots of the 10th conjugation

वह्निस्तस्य जलायते जलनिधिः कुल्यायते तत्क्षणात्
मेरुः स्वल्पशिलायते मृगपतिः सद्यः कुरङ्गायते ।
व्यालो माल्यगुणायते विपरसः पीयूषवर्षायते
यस्याङ्गेऽखिललोकवल्लभतमं शील समुन्मीलति ॥ १ ॥
तिष्ठन्ति सधनद्वारे गुणिनः किङ्करा इव ।
दोषा अपि गुणायन्ते दोषायन्ते गुणा अपि ॥ २ ॥

---

## Sanskrit Prosody

Sanskrit literature may be divided in two groups, namely, गद्य and पद्य The पद्य is a combination of four padâs which are regulated by the number of syllables ( अक्षर ) or by the number of syllabic instant-

पद्य

जाति ( regulated by the number of syllabic instants in each pada )

वृत्त ( regulated by the number and position of syllables in each pada )

अक्षर is as much of a word as can be pronounced at one, that is a vowel with or without one or more consonants

1 An अक्षर is लघु or गुरु according as the vowel is short or long. The vowels अ, इ, उ, ऋ, ऌ are short and आ, ई, ऊ, ॠ, ॡ, and ए, ऐ, ओ, औ are long But a short vowel becomes long in prosody when it is followed by an Anusvára or visarga, or by a conjunct consonant e. g सान्त्व where सा is long.

सानुस्वारश्च दीर्घश्च विसर्गी च गुरुर्भवेत् ।
वर्णः संयोगपूर्वश्च तथा पादान्तगोऽपि वा ॥

2 In जाति the metre is regulated by syllabic instants. One instant ( मात्रा ) is allotted to a short vowel and two to a long one

3 A वृत्त is known from the Gaṇās it contains. The Ganās are eight य र त भ ज स म न. Each Gaṇa consists of three syllables The above Gaṇās can be expressed in symbols like ⏑ ( लघु ), – ( गुरु ).

य ⏑ – –  भ – ⏑ ⏑  म – – –
र – ⏑ –  ज ⏑ – ⏑  न ⏑ ⏑ ⏑
त – – ⏑  स ⏑ ⏑ –

Similarly ल is used to denote a short syllable and ग a long one. The verse given below describes the Ganās very well.

आदिमध्यावसानेषु यरता यान्ति लाघवम् ।
भजसा गौरवं यान्ति मनौ तु गुरु लाघवम् ।

Or the line यमाताराजभानसलगम् gives the short and long syllables, if the two following syllables are taken to represent the Gaṇa, the first letter of which is the name of it e. g. यमाता–यगण, मातारा–मगण, ताराज–तगण, राजभा–रगण and so on The definitions of different वृत्तs are given in the exercises at the end of poetry lessons.